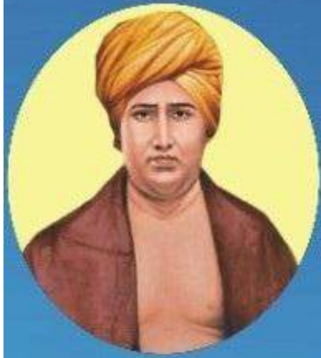

वर्ष २ अंक २१
संवत् २०७७ ज्येष्ठ
जून २०२०

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम क्रांति के महान् योद्धा दामोदर हरि चापेकर जी की पुण्यतिथि

स्वतंत्रता संग्राम प्रथम क्रांति की महान् वीरांगना महारानी लक्ष्मी बाई की पुण्यतिथि

छत्रपति शिवाजी की माता जीजाबाई की पुण्यतिथि

महारानी दुर्गावती की पुण्यतिथि

पंडित राम प्रसाद बिस्मिल जी की जयंती

पर आर्य लेखक परिषद् की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।
ऐसे महान् वीरांगनाओं पर हमें गर्व है। उन महान् योद्धाओं को आओ हम स्मरण करें ।
ऐसे भारत के महान् बलिदानियों से भारतवर्ष का गौरवमयी इतिहास का निर्माण हुआ।

पर्यावरण के साथ हम,करें मित्रवत् व्यवहार । जीवन,समाज,संस्कृति का होगा तभी सुधार।
सहज स्वार्थ को त्याग कर हों मन,वाणी से शुद्ध । यह वेद उपदेश है व कहते गौतम बुद्ध।
धर्म मार्ग का अनुसरण करें पर्यावरण सुधार । वेद– वेदांग व उपनिषद्,है सद ग्रंथों का सार।
– अखिलेश आर्येन्दु

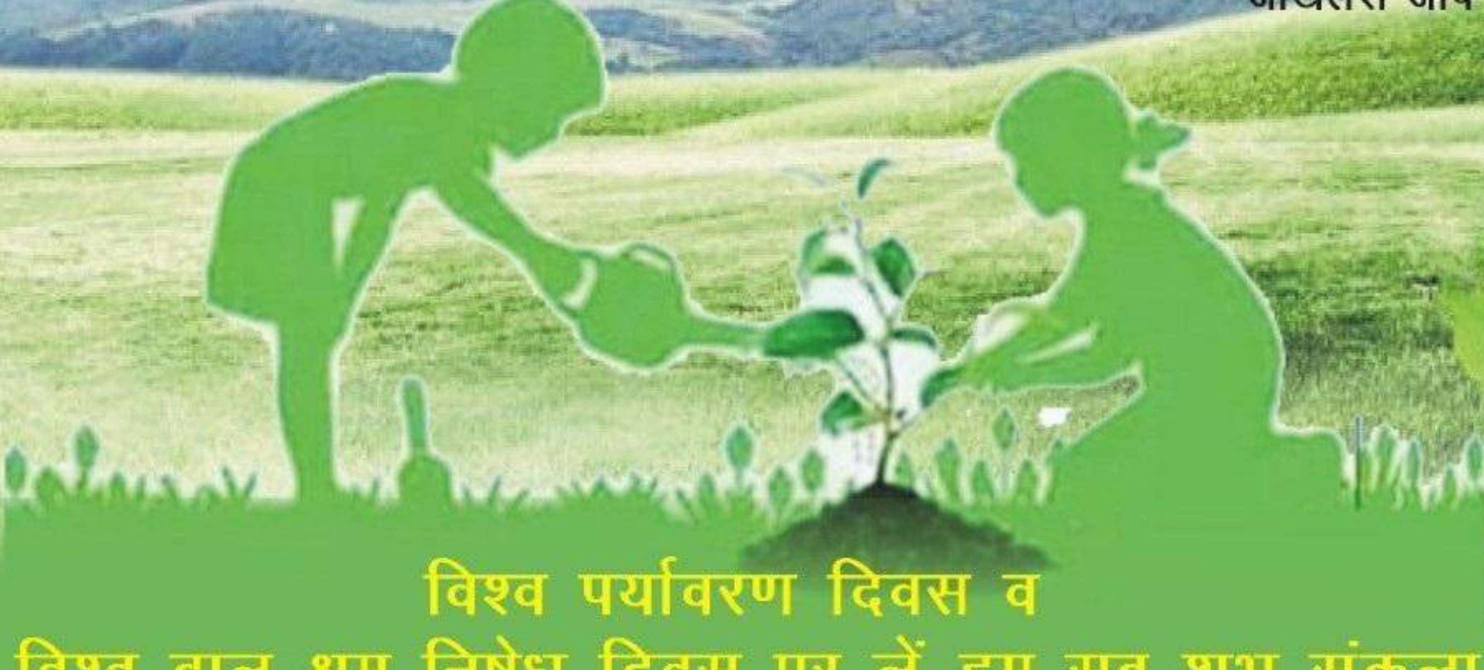

विश्व पर्यावरण दिवस व
विश्व बाल श्रम निषेध दिवस पर लें हम सब शुभ संकल्प
शुद्ध मन,वाणी,कर्म से मिटाएं अंधेरे का दंश।

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

जून 2020

वर्ष–२ अंक–२१,
विक्रम संवत् २०७७
दयानन्दाब्द– १९६
कलि संवत् – ५१२१
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३६६७६६३०,
६६६३६७०६४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१ आत्मनिर्भरता (सम्पादकीय)
२ उठ–उठ भारत के नौनिहाल (कविता)
३ सामाजिक पूंजी का क्षरण कैसे रोका जाए ?
४ Upnayan To Samavaartan
५ मित्र दृष्टि
६ समस्त समस्याओं का समाधान संस्कृत से
७ यथायोग्य व्यवहार बढाओ (कविता)
८ महर्षि दयानन्द ओंकार–अर्थ–अनुशीलन
९ सत्यार्थ प्रकाश में आधुनिक विज्ञान
१० स्वातंत्र्य समर में सशस्त्र क्रान्ति के प्रथम प्रणेता
११ सत्य के प्रतिमान और पालन (कविता)
१२ पशु–वेदना (कविता)

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

आत्मनिर्भरता

स्वदेशी की चर्चा के पश्चात् अब स्वावलंबन की बात करते हैं। इसे ही आत्मनिर्भरता कहते हैं, इसका अर्थ है स्वयं के प्रयत्न से अपना योग क्षेम सिद्ध करना। निर्भरता एक सच्चाई है, अवलंबन एक वास्तविकता है। कोई भी मनुष्य अकेले जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। जन्म के साथ ही जीवन अन्यों के ऊपर निर्भर होता है। यदि माता–पिता नवजात शिशु को न सम्भालें तो वह एक दिन भी नहीं जी सकता। मानव शिशु वर्षों सेवा लेता है तब कहीं जाकर वह अपने पैरों पर खड़ा होता है। जीवन भर अन्यों के ऊपर निर्भर रहता है और मरने पर भी चार कंधों पर निर्भर रहता है। शरीर में बैठा जीव शरीर के अंगों पर निर्भर है। उनके सहयोग के बिना पंगु है। दूसरी ओर शरीर के अंग भी एक दूसरे पर निर्भर हैं। एक पैर उठाने के लिए दूसरे पैर का सहारा चाहिए अन्यथा कोई एक पांव भी नहीं उठा सकता। कभी इन अंगों को शरीर से पृथक् वस्तु का भी सहारा लेना पड़ता है जैसे आंख को चश्मे का और टांग को बैसाखी का और व्हीलचेयर का इत्यादि। वास्तव में जीवन न तो स्वतंत्र है और न ही परतंत्र। यदि स्वतंत्र होता तो कुछ भी कर सकता था और यदि परतंत्र होता तो कुछ भी न कर सकता। जीवन परस्पर तंत्र है, हमारी स्वतंत्रता और परतंत्रता अन्योन्याश्रित है। वेद के शब्दों में कहा जाए तो –

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।।

– यजुर्वेद ३–५०

अर्थात् *"तू मुझे दे, मैं तुझे देता हूं, तू मुझे सम्भाल मैं तुझे सम्भालता हूं।"* लेना–देना और परस्पर सम्भालना यही जीवन की सच्चाई है, इसे ही सामाजिकता कहते हैं। अतः समाज में कोई यह न कहे कि हमें किसी से क्या लेना–देना अथवा कुछ भी लेना–देना नहीं है।

लेते तो सभी हैं और लेने के लिए सदा समुत्सुक और लालायित रहते हैं। कठिनाई तो देने में आती है। लोग देना नहीं चाहते। यहीं से उपद्रव और अशांति जन्म लेते हैं। एक स्वस्थ समाज और राष्ट्र के लिए यह आवश्यक और अनिवार्य होता है कि वह अपनी संतति में यह दो भाव संस्कारों के माध्यम से प्रतिष्ठित करे। प्रथम देने वालों के प्रति कृतज्ञता और आदर तथा स्वयं देने की उदारता। दूसरी ओर जो जीवन को अवलम्ब देने वाले हैं उनमें भी दो योग्यताएं हों। एक जीवन को सम्भालने की दक्षता, कुशलता और अपनत्व तथा वात्सल्य। यह दोनों गुण एक तत्व को उत्पन्न करते हैं जिसे ***'स्व'*** कहते हैं। इस स्व के साथ ही वे *स्वजन* कहलाते हैं और जिसे सहारा देते हैं उसे भी स्वजन मानते हैं। पोषण प्राप्त करने वाला भी उन्हें स्वजन मानता है। ऐसी स्थिति में छल कपट और कृपणता रहित अवलंबन प्राप्त होता है। इसे ही स्वावलंबन कहते हैं। जीवन स्वजनों पर अवलंबित होता है और ईमानदार सार सम्भाल प्राप्त करता है। परन्तु जीवन सदा दूसरों पर ही अवलंबित नहीं रह सकता, उसे आत्मनिर्भर बनाना आवश्यक होता है। जो लोग जीवन का अवलंब बनते हैं वह जीवन को आत्मनिर्भर बनाने के लिए ही अवलंब बनते हैं। वे सदैव सहारा नहीं दे सकते। उनका पालन पोषण कार्य जीवन को आत्मनिर्भर बना कर अन्यों के लिए अवलंब देने योग्य बनाना होता है, यही अवलंबन का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए जीवन के पालकों–पोषकों को पालन पोषण के साथ उसे आत्मनिर्भरता की प्रेरणा प्रदान करना आवश्यक है और जीवन में निहित सामर्थ्य से परिचित कराना भी आवश्यक होता है। यह भी एक कला है। दूसरी ओर जिस जीवन को अवलम्ब दिया जा रहा है उसमें भी आत्मनिर्भर बनने की इच्छा और उत्साह होना चाहिए। किसी को बलात् आत्मनिर्भर नहीं बनाया जा सकता। इसलिए पालन पोषण देने वालों की ओर से दी जाने वाली आत्म निर्भरता की प्रेरणा देने की बात वेद ने कही है।

स्वयं वाजिन् तन्वं कल्पयस्व
स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा ते अन्येन न संनशे।।

– यजुर्वेद २३–१५

इसका अर्थ है हे शक्तिशाली जीव! तू स्वयं अपने आप को समर्थ बना, स्वयं समुचित प्रयत्न कर और स्वयं के पुरुषार्थ से प्राप्त का उपभोग कर, देखना कहीं कोई

अन्य तेरी महिमा को नष्ट न कर दे। और

अश्माभव। परशुर्भव।।

तू चट्टान सा दृढ़ और कुठार सा तीक्ष्ण हो जा।

कविवर दिनकर के शब्दों में –

बढ़कर विपत्तियों पर छाजा,
मेरे किशोर! मेरे ताजा!
जीवन का रस छन जाने दे,
तन को पत्थर बन जाने दे।
तू स्वयं तेज भयकारी है,
क्या कर सकती चिंगारी है।।

यह है जीवन को स्वावलंबी या आत्मनिर्भर बनाने का दर्शन, जिसे आज उपेक्षित कर दिया गया है। हमने छल, कपट और कृपणता रहित वात्सल्यमय ईमानदार अवलम्ब का त्याग करके बेईमान अवलंब को पकड़ लिया है, इसलिए पितृत्व वृद्ध आश्रमों में और बचपन क्रेच घरों में तड़पने के लिए विवश है। कहीं कोई आत्मनिर्भर नहीं रहा और न होने की आशा है।

आज आमजनजीवन कुछ खास खूंखार दरिंदों के निर्दय पंजों में जकड़ लिया गया है। उसकी जीविका, शिक्षा, चिकित्सा और न्याय सब कुछ छीन लिया गया है। उसकी मेहनत की कमाई भी हड़प ली गई और अब उसे आत्मनिर्भर बनने का उपदेश दिया जा रहा है। वह अपनी व्यथा–कथा भी नहीं सुना सकता। बोलने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया है। जीने के पुराने तौर तरीके और संसाधनों को नष्ट कर दिया गया है। उसे अकिंचन बनाकर भूख, बीमारी से तड़पने रोने और मरने के लिए विवश बना दिया गया है।

दिनकर के शब्दों में –

सुख समृद्धि का विपुल कोष
संचित कर कल, बल, छल से,
किसी क्षुधित का ग्रास छीन,
धन लूट किसी निर्बल से।
सब समेट, प्रहरी बिठला कर
कहते कुछ मत बोलो,
शांति सुधा बह रही न इसमें
गरल क्रांति का घोलो।
हिलो–डुलो मत हृदय–रक्त
हमको अपना पीने दो,
अचल रहे साम्राज्य शांति का
जियो और जीने दो।।

जब आम जन को सुरक्षा और न्याय देने के लिए बनाई गई सुरक्षा एजेंसियां, पुलिस, न्यायपालिका आदि ही आमजन को प्रताड़ित करने लगें, उसका स्वत्व हरण करने लगें, तब फिर विवश लाचार के समक्ष आत्मनिर्भर बनने का एक ही मार्ग खुला मिलता है कि वह जान हथेली पर रखकर शोषक शत्रु पर पूरे वेग से टूट पड़े और अपने *'स्व'* की रक्षा के लिए लड़ता हुआ मर जाए या फिर अपने स्वत्व को शत्रु के जबड़े से खींच कर निकाल लाए।

छीनता हो स्वत्व कोई और तू,
त्याग–तप से कामले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

उठ–उठ भारत के नौनिहाल

हो गया सवेरा जग जागा,
उठ–उठ भारत के नौनिहाल।
तू भी अपनी सुध बुध सम्हाल,
उठ–उठ भारत के नौनिहाल।

जग जाग उठा तू सोता है,
उठता है तो उठ कर रोता है,
पर रोने से क्या होता है,
मैदां में निकल कर ठोंक ताल।
उठ–उठ....

तू क्या था, क्या हो गया आज,
कहां गया तेरा तख्त और ताज,
क्यों तुझे नहीं कुछ लोक लाज,
अब तो अपने घर को,सम्हाल।
उठ–उठ....

घनघोर अविद्या छाई है,
भाई का दुश्मन भाई है,
तू फूट अविद्या दोनों को
धक्के दे कर घर से निकाल।।
उठ–उठ....

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

सामाजिक पूंजी का क्षरण कैसे रोका जाए ?

— ✍ अखिलेश आर्येन्दु

विश्व समाज आधुनिक विज्ञान और अप संस्कृति के प्रभाव में आगे बढ़ रहा है। भिन्न भिन्न संस्कृतियों के लोग, अनेक मत मजहब के लोग, विभिन्न विचारों और धारणाओं से प्रभावित हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में एक अलग किस्म की संस्कृति की धारा लोगों को प्रभावित करती रही है। स्वतंत्रता के बाद भारत में धर्मनिरपेक्षता के नाम पर ऐसी अनेक धाराएं और विचार मान्यताएं और धारणाएं पलती रही है जो धर्म के विरुद्ध रही हैं। एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए समाज में जिन संस्थाओं ने कार्य किया उनका प्रभाव समग्र रूप से सब लोगों के समाधान के लिए नहीं हो पाया। सामाजिक पूंजी का जो भंडार, भारतीय समाज की उन्नति विकास के लिए स्वतंत्रता के पहले लोगों की सम्पत्ति हुआ करते थे, वे धीरे–धीरे क्षीणता को प्राप्त हो गए। भारत में विदेशी शासन से छुटकारा और स्वदेशी शासन के होने के उपरान्त जिस भारतीय समाज की आवश्यकता थी उसके निर्माण के लिए ऐसे प्रयास नहीं किए गए जो किए जाने चाहिए थे जिससे समाज का नवनिर्माण नहीं हो सका।

देश की उन्नति के लिए ऐसी धारा नहीं अपनाई गई, जो सबके लिए कल्याणकारी हो। और, जिस उद्देश्य के लिए स्वतंत्रता प्राप्त की गई थी उस उद्देश्य से कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया। न तो समाज का सुधार हुआ, न तो देश की अलग पहचान बनी। स्वतंत्रता प्राप्ति के इन 72 वर्षों में स्थितियां भयावह हो गई हैं। सभी तरह के सम्बन्ध, मूल्य, सद्‌गुण और आदर्श समाप्त होते जा रहे हैं। सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक पूंजी का क्षरण जिस तरह चारों तरफ देखने को मिल रहा है, वह भविष्य के लिए एक दुःस्वप्न पैदा कर रहा है। मानव मूल्य, पारिवारिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य और शैक्षिक मूल्यों का ताना–बाना टूटता नजर आ रहा है। इसके बावजूद समाज के जिम्मेदार लोग चुप हैं। राज सत्ताएं स्वच्छंद हो गई हैं जिसे स्वतंत्र कहा जा रहा है। ऐसा लगता है जैसे सब कुछ, हर दिशा और हर वर्ग में ठीक–ठाक चल रहा है। यह स्वस्थ समाज निर्माण और संस्कृति के लिए एक बेहद चिंता की बात है। मानव समाज एक आदर्श समाज तभी बनता है, जब मानव मूल्य, सामाजिक मूल्य और संस्कृति के मूल्य संरक्षित रहते हैं। जिस प्रकार से पैसे का अवमूल्यन हुआ है उसी प्रकार मानव मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। सामाजिक पूंजी का भी अवमूल्यन हुआ है। एक स्वस्थ समाज के लिए जिन स्वस्थ विचारों, सद्‌गुणों, शुभ कर्मों, धाराओं और प्रवृत्तियों का होना आवश्यक है वे कहीं दूर ठहरे हुए हैं। हमें अपने विकास, प्रगति और बेहतरी का मूल्यांकन करते वक्त मूल्यों की स्थिति पर गौर अवश्य करना चाहिए। यह सभी मानव के आपसी रिश्तों पर आधारित होते हैं। आज मनुष्य–मनुष्य में विघटन और दरार जिस तेजी के साथ दिखाई पड़ रही है वह अत्यंत चिंता की बात है। आपसी विश्वास, सम्मान, प्रेम, स्नेह और भाईचारे की भावना का आजादी के बाद से ही जो क्षरण शुरू हुआ था वह आज नाजुक स्थिति में पहुंच चुका है। आज स्थितियां इस तरह हो गई हैं कि परिवार के सबसे पवित्र, पावन और विश्वास वाले सम्बन्धों में अविश्वास दिखाई पड़ने लगा है। विशेषकर स्त्रियों के प्रति

दृष्टिकोण में बदलाव आया है। यह बदलाव क्यों आया है, किसके माध्यम से आया है, इसे समझने की आवश्यकता है।

भारतीय समाज में भाग्यवाद और मान्यता को किसी सिद्धांत की तरह माना जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है – गुण, कर्म, स्वभाव के स्थान पर भाग्य को प्राथमिकता दी जाती है। एक जुमला आमतौर पर लोगों के मुंह से सुना जाता है – अरे क्या करें, जमाने का दोष है! जब जमाना ही खराब आ गया है तो ऐसा होना ही था। बहुत सारे लोग विकृतियों, विद्रूपताओं, समस्याओं का सदियों और विकृत घटनाओं के लिए एक जुमला झट से फलक पर उतार देते हैं। क्या किया जाए, कलयुग आ गया है। कलयुग में तो सब होता ही

है। तुलसीदास ने भी कलयुग को महान् कष्टकारी कहा है, अर्थात् अपनी जिम्मेदारियों, कर्तव्यों, कार्यों और विकृत विचारों पर ध्यान न देकर कलयुग व समय पर दोष मढ़कर स्वयं को पाक साफ करने की कोशिश की जाती है। ऐसे लोगों से पूछा जाए कि तमाम पश्चिमी देशों और विकसित देशों में तमाम तरह की समस्याएं, विकृ–तियां और त्रासदी देखने को बहुत कम आती हैं। क्या वहां कलयुग नहीं है ? भारत में हर व्यक्ति समाज के प्रति स्वयं की जिम्मेदारियों और कर्तव्यों से बचना चाहता है। इसलिए समस्याएं कम होने के स्थान पर लगातार बढ़ती जाती हैं। इसमें न तो केंद्र सरकार का दोष है और न तो राज्य सरकार का। हमें चीजों को गहराई से समझने की आवश्यकता है। जब तक हम खुले मन और विचारों से चीजों को समझेंगे नहीं, चीजों को देखेंगे नहीं, तब तक हम कुछ घिसी पीटी मान्यताओं और विचारों पर स्वयं को स्थापित करते रहेंगे। पिछले कुछ वर्षों से उत्तर और पूर्व के राज्यों में महिलाओं और लड़कियों के प्रति अपराध बहुत तेजी के साथ बढ़े हैं। इसे लेकर लोग यहां की सरकारों को दोष देते रहे हैं। क्या यह सही है ? क्या सरकार इसके लिए दोषी हैं? सरकारों का दोष बस इतना ही है कि समाज के अपराधी तत्वों पर लगाम नहीं लगाई जा सकी और ऐसे तत्व आए दिन वारदातें करते रहते हैं। लेकिन परिवारों में होने वाली हिंसा, दुष्कर्म और शोषण के लिए राज्य, केंद्र सरकार कैसे जिम्मेदार है। यहां पर जिसकी जिम्मेदारी है उसे समझना चाहिए। जहां पर जिसका दोष हो उसे सच्चाई से स्वीकार भी करना चाहिए। जो दोषी हो उसे दोषी न मानकर दूसरे को दोषी मानने का अर्थ है, एक प्रकार से अपराधी तत्वों को बढ़ावा देना। क्या यह स्वस्थ समाज निर्माण की दिशा में रुकावट नहीं है? क्या यह समाज को विकृति की तरफ नहीं ले जाता ? क्या यह रूढ़िवादिता की तरफ नहीं ले जाता ? हमें समझने की आवश्यकता है।

समाज में बच्चे भविष्य के आधार होते हैं। आज बच्चों पर आए दिन तरह–तरह के जुल्म ढाए जाते हैं। दुष्कर्म और प्रताड़ना की घटनाओं की बाढ़ आ गई है। यह क्यों बढ़ती जा रही है इसे समझने की आवश्यकता है। राजधानी दिल्ली में ही बच्चों का अपहरण, शोषण, क्रूरता और हिंसक वारदातें होती हैं। कानूनों और बहुत शोरगुल मचाने के बाद भी यह आज भी जारी है। सरकारें बदलीं लेकिन स्थितियां वहीं की वहीं हैं। ऐसा क्यों हो रहा है, इसे हममें से प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं से पूछने की आवश्यकता है। अपनी जिम्मेदारियों को समझने की आवश्यकता है। पुलिस के संरक्षण में होने वाले अपराध निरंतर बढ़ रहे हैं। इन अपराधियों के पीछे चाहे जिन तत्वों का हाथ हो, लेकिन यह अपराध समाज को अंधकार में धकेल रहे हैं। हमें सोचना चाहिए। समझना चाहिए। विचार करना चाहिए। खुले मन से चिंतन करना चाहिए। समाज को बचाने के लिए बढ़ते अपराधों पर हम कैसे लगाम लगा सकते हैं। बच्चों, महिलाओं या लड़कियों के साथ कहीं अमानवीय वारदातें होती हैं, जो अमानवीय बर्ताव होते हैं हम चुपचाप सुन–देख लेते हैं। सोचने की आवश्यकता है, क्या इससे सामाजिक पूंजी का क्षरण नहीं हो रहा है ? क्या इससे मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन नहीं हो रहा है ? जिन मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों से भारतीय समाज में कभी आदर्श स्थापित हुए थे वे मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। इसे रोकने की आवश्यकता क्यों नहीं है। हमारा आपका कर्तव्य क्या है ? क्या इस तरफ चिंतन हमारा नहीं होना चाहिए, जो भी कुछ अमानवीय होता है, जो लोग गंदे कार्य करते हैं, हिंसा, अपराध, शोषण के दोषी हैं, क्या उनका हम बहिष्कार करते हैं ? सामाजिक रूप से क्या उन्हें हम उपेक्षित करते हैं ? हमें समाज को बचाना है। सामाजिक पूंजी को बचाना है तो ऐसे तत्वों का बहिष्कार करना आवश्यक है, जो समाज के नवनिर्माण में बाधक हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए उसका अपने प्रति परिवार, समाज, देश, संस्कृति और विश्व के प्रति विशेष जिम्मेदारियां होती हैं। कर्तव्य होते हैं। जो कर्तव्य हमारे हैं, वे कर्तव्य हमें यह क्या नहीं बताते कि हमें जीवन के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है ? सामाजिक प्राणी होने के कारण हम सभी को सामाजिक मूल्यों के क्षरण को रोकना हमारे स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक है। मनुष्य होने के कारण हमारे पास एक सामाजिक पूंजी होनी चाहिए, जो समाज के नवनिर्माण के लिए आवश्यक है। यह सामाजिक पूंजी हमें हमारी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक करती है। यदि हम किसी के दुर्घटना में सहानुभूति पूर्वक सम्मिलित नहीं हुए तो इसका अर्थ यह है हमारी चेतना की पूंजी समाप्त हो गई हैं और हम दो हाथ पैरों के पशु जैसे

बन कर रह गए हैं। ऐसे में कैसे दावा कर सकते हैं कि हम पहले से अधिक समृद्ध हैं, अधिक खुशहाल और अधिक संवेदना युक्त हुए हैं ? जमाने में परिवर्तन सकारात्मक दिशा में न होकर ऋणात्मक अर्थात् पतन की ओर हुआ है। यह सही है। हमारी आर्थिक पूंजी में वृद्धि हुई है, लेकिन पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पूंजी का तो ह्रास ही हुआ है। आर्थिक पूंजी में जो बढ़ोतरी हुई है उससे भी समाज में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। लेकिन यह परिवर्तन कई समस्याओं को साथ लेकर आया है। इस बात को हम समझने का प्रयास करें कि जमाना नहीं बदला है, बल्कि हमारे पास जो कुछ भी मूल्यपरक हुआ करता था, उसका रूप, ढंग और रंग बदल गया है। हमारे मन के भाव, हृदय की पवित्रता और सात्विक बुद्धि की जो पूंजी थी उसमें ह्रास हुआ और परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन को हमें समझने की आवश्यकता है। हम विकास करना यदि सच्चे अर्थों में चाहते हैं, हमें आगे बढ़ना है, लेकिन संवेदना, विवेक, बुद्धि और मूल्यों की पूंजी को साथ लेकर नहीं बढ़ रहे हैं, इसलिए व्यक्ति के रूप में हम जहां समाप्त होते जा रहे हैं वहीं पर सामाजिक प्राणी के रूप में भी हमारी स्थिति डांवाडोल हो रही है। यही कारण है कि हमें कोई हमारी जिम्मेदारी, कर्तव्य और संवेदना पर टोकता है तो हम तिलमिला उठते हैं। यह झुंझलाहट हमारे मूल्यों अर्थात् पूंजी के क्षरण को ही बताती है। और मन की आंखों से देखने की आवश्यकता है। जीवन को जीवन की तरह देखने की आवश्यकता है। परिवार, समाज में हम जब उस तरह से अपने भाव नहीं रखते जिससे सामाजिक समरसता और स्वच्छता का माहौल बने, सद्भावना बढ़े, दुर्भावना हटे, मूल्यों का विकास हो, मूल्य स्थापित हो, समाज ठीक दिशा में आगे बढ़े, सदाचार के मूल्य समाज के अंग बनें, इसलिए हमें समझने की आवश्यकता है। विचार करने की आवश्यकता है। हम दूसरों को दोष देने के बनस्पित अपने दोष देखने का अभ्यास करें। निश्चित है इस कार्य से हमारा मानसिक स्तर बढ़ेगा। परिवार में आपसी सद्भावना बढ़ेगी। इससे मूल्यों की स्थापना होगी। समय को दोष देने से किसी समस्या का समाधान नहीं है। समस्या का समाधान समय की धड़कन को समझ कर, जो सबसे उपयुक्त हो, उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने की है। धन, संसाधन, सुविधाएं हर व्यक्ति को चाहिए, लेकिन मूल्यों का धन, मूल्यों की स्थापना भी होनी चाहिए। इसके प्रति किसी का रुझान नहीं है।

अगर देखें तो स्वतंत्रता के बाद हम अत्यंत भीरू बनें हैं। हम अत्यंत स्वयं में जटिल होते गए हैं। हमें स्वार्थों से ऊपर उठ कर अपनी दृष्टि को स्वच्छ और स्वस्थ रखना होगा। हम संकुचित दृष्टिकोण को लेकर वह प्राप्त करना चाहते हैं जो प्राप्त नहीं हो सकता। देखा जाए तो हमारे अंदर से शुभता और सात्विकता का क्षरण और मरण दोनों साथ साथ हो रहा है। हमारी स्थिति इतनी असंवेदनशील हो गई है कि हम इस ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं दे रहे हैं। हमारी अंतरात्मा की शक्ति, हमारे प्राणों की शक्ति, हमारी इंद्रियों की शक्ति, हमारे मन की शक्ति, हमारी बुद्धि और विवेक की शक्ति ऐसे कार्यों में नहीं लग रही है, जो समाज के नव निर्माण के लिए आवश्यक है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति यदि चाहे तो अपनी स्थिति के साथ–साथ अपने परिवार में, समाज में और देश में एक स्वस्थ परम्परा का, मानवीय मूल्यों का और शुभत्व का निर्माण कर सकता है और आगे बढ़ा सकता है।

आज आधुनिकता के साथ हम सोशल मीडिया के माध्यम से गपशप करने में इतने अधिक उलझ गए हैं, इतने अधिक अस्त – व्यस्त हो गए हैं कि हमारे पास सामाजिक जिम्मेदारियों के निभाने की सोच ही खत्म हो गई है। किसी कवि ने कहा है– *दुखद है हमारे सपनों का मर जाना।* सामाजिकता के नवनिर्माण में हमारे स्वप्न मर रहे हैं। हमारी स्वस्थ परम्पराएं समाप्त हो रही हैं। हमारे पुरखों व ऋषि–मुनियों ने हमें विरासत में जो अखण्ड जीवन दर्शन दिया था, हमें पूंजी सौंपी थी, वह छिन्न–भिन्न हो रही है। समय के गर्त में पीढ़ियां समाती जा रही हैं, और हम इतने असंवेदनशील हो गए हैं कि अपनी पीढ़ी को सही दिशा देने में अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं समझ पा रहे हैं। हम दूसरे की निंदा – स्तुति में इतने अधिक व्यस्त हो गए हैं कि हम अपने लिए भी उस पूंजी का निर्माण नहीं कर पा रहे हैं, संग्रह नहीं कर पा रहे हैं जो स्वयं के विकास के लिए आवश्यक है। सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि हममें मायूसी आ गई है। किसी कवि ने लिखा है–

होकर मायूस न यूं शाम से ढलते रहिए।
जिंदगी भोर है सूरज से निकलते रहिए।

अगर एक पैर पर ठहरोगे तो थक जाओगे। धीरे–धीरे ही सही राह पर चलते रहिए। आवश्यकता है हमें स्वयं को याद दिलाने की जिस प्रकार से समुद्र को लांघने के लिए हनुमान को याद दिलाया गया था, उसी प्रकार हमें कुप्रवृत्तियों, समस्याओं और चिंताओं को लांघ करके एक उज्ज्वल सुबह के लिए, आनन्दमय सुबह के लिए, सद् प्रयास करना है। हमें स्वयं अपने में ही संकुचित न हो कर दूसरों के लिए भी कुछ करने के लिए चिंतन करने की आवश्यकता है। ***क्या आप तैयार हैं ? मैं सोचता हूं आप तैयार होंगे।*** आपको तैयार होना भी चाहिए। मनुष्य का जन्म ही निराशा के भंवर से ऊपर उठकर आशा के सुबह में आनन्दमय सोच के साथ आगे बढ़ने के लिए है। कभी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा था –

नर हो, न निराश करो मन को।
कुछ काम करो, कुछ काम करो।
जग में रह कर कुछ नाम करो।
सम्भलो कि सुयोग न जाए चला।
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को।
नर हो, न निराश करो मन को।

****

सत्पुरुष – जो सत्यप्रिय, धर्मात्मा, विद्वान् सबके हितकारी और महाशय होते हैं; वे **सत्पुरुष** कहाते हैं।

सत्संग – जिस करके झूठ से छूटके सत्य की ही प्राप्ति होती है उसको **सत्संग** और जिस करके पापों में जीव फंसे उसको **कुसंग** कहते हैं।

तीर्थ – जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का संग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता, उत्तम कर्म हैं, वे सब **तीर्थ** कहाते हैं क्योंकि जिन करके जीव दुःखसागर से तर जा सकते हैं।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल/ कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

UPNAYAN TO SAMAAVARTAN

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

'Up' means near and 'nayan' means to get or to take. Thus 'Upnayan' means 'to take near'. Under the Vedic Education System a child at the age of 5 years starts learning pronunciation of syllables from his or her mother, who is naturally the first teacher. After that the child learns a few things from his or her father.

Now the children come to attain the age of schooling. They are divided into three categories on the basis of the varnas of their fathers. The kids of Brahmins are expected to learn all Vedas and to attain complete Vedic knowledge. The kids of Kshatriyas and Vaishyas are supposed to have less and lesser knowledge. So their ages of admission to gurukuls were accordingly different.

Our Grihya Sutras advise that the Yajnopaveet Sanskar of the kids of Brahmins should be performed in the 8th year of their age. This age in cases of the Kshatriyas and Vaishyas is respectively 11th and 12th year. Rishi Dayanand advises to perform the first yajna at the parents' house and the second one in the Gurukul.

In the Yajnopaveet Sanskar the sacred thread is given to the boy or the girl to start his or her life of knowledge. The Upnayan Sanskar means to start his or her classes in the Gurukul. The Vedarambha Sanskar means the start of Veda-classes in the Gurukul. It has already been clarified that the boys have to reside and study in the boys' Gurukul, and the girls in the girls' Gurukul.

In the 'Yajnopaveet' the term 'yajna' means to perform yajna and 'upaveet' means the sacred thread. The sacred thread contains three yarns meaning as if to repay the three debts. Each arya person owes three debts to Three Greats, i.e., the parents, the teachers and the Devas. After their names the debts have been named as Pitri Rin, Rishi Rin and Deva Rin. One yarn represents one of the three debts. Since this is a cultural duty and not an individual issue, the yarns are always three, and there is no sense in wearing less yarns or more.

The main duty of repaying the debts belongs to the later part of life. During the Brahmcharya Ashrama the pupil is to observe Brahmcharya, to devote himself or herself to the studies, and to obey the Acharya who ceremonised the Sanskar and is now teaching.

मातृमान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

(The mother, the father and the Acharya, these three make a man learned and great.)

The Acharya was supposed 'to take the pupil near and nearer to (Vedas) true knowledge, (Dharma) righteousness, national duty and human responsibility, and (Ishvar) God, peace and moksha'. For this

the 'Upnayan Sanskar' was performed and after this the Acharya (preceptor) and the Shishya (pupil) lived together to fulfill the goal. The pupil devoted himself heart and soul before the Acharya till completing his education.

The Acharya usually taught him Sanskrit Grammar, Vedas and God's Worship. All boys and girls cannot be equal to attain this Wisdom. So each one of them was given and taught according to his or her capability and objective. The pupils who were Brahmanic in nature, i.e., who deserved to attain the complete Vedic Wisdom and wished to attain it, were taught the Four Vedas with complete meaning and गुण–कर्म–स्वभाव (qualities, actions and nature) of God and the process as how to realise Him.

The pupils with lesser capabilities and objectives were taught practical Grammar and selected Hymns of Vedas. Those who were Kshatriya in nature, were taught the System of Warfare, Justice and Administration. Those, Vaishya by nature, were taught the subjects of Agriculture, Animal Husbandry and Trade. The medical, productive and technical education was given to the pupils of such interests and social needs.

On the basis of 'Tattiriya Upanishad' Satyartha Prakasha speaks that the teachers should instruct their pupils in the following way:-

"My children! Always speak the truth, lead a virtuous life, abstain from sexual indulgence, never be negligent in learning and teaching, devote yourselves to physical and spiritual sciences till your knowledge is perfect, then procure for your preceptor anything that he needs, thereafter go and get married. Never be indifferent to truth and religion. Never neglect your health or the cultivation of any skill or talent you may possess.

"Never be indifferent to the acquisition of wealth, power etc. Never neglect your studies. Never neglect to serve your father, mother, teacher and guests. Love virtue and shun vice. Imbibe our virtues and not our faults or imperfections. Always keep the company of those Brahmins amongst us who are learned and imbued with piety. Put your trust in them and them only.''

When the pupils were about to complete their education, their Samaavartan Sanskar (convocation) was performed. They were individually given a Varna according to his or her गुण–कर्म–स्वभाव (qualities, functions and temperaments). The Acharyas of boys' and girls' Gurukuls tried to match their pupils for marriage. Then they were permitted to leave for home to lead a family life.

Thus the Gurukul life starts with the Upnayan Sanskar and completes with the Samaavartan Sanskar. The Sanskrit word समावर्त्तन means the return or coming back home. Although the study in the form of स्वाध्याय or self-study runs through the whole life, the regular study in Gurukul runs upto the Samaavartan Sanskar. ****

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते। (ऋ० १.४०.१)

हे वेद रक्षको! जागो, उठो ।

मित्र दृष्टि

– ✍ पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।
– यजुर्वेद अध्याय ३६, मंत्र १८

अन्वयः – (हे) दृते, मा (मां) दृंह। सर्वाणिभूतानि मा (माम्) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षन्ताम्। अहं मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। (वयं) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

अर्थ – *(दृते) हे सर्वाधार परमात्मन् (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणी वर्ग (मा) मुझको (मित्रस्यचक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षन्ताम्) देखें। (अहं) मैं (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को मित्र की (मित्रस्यचक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षे) देंखू। (वयं मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे) हम सब लोग एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। ये भाव हम में दृढ़ हो।*

व्याख्या – कहने के लिए तो इस मंत्र में अत्यंत साधारण बात का उपदेश किया गया है। अर्थात् सब लोग मेरे दोस्त हों और मैं सब लोगों का दोस्त होऊं। तथ्य यह है कि यद्यपि सृष्टि के आरम्भ से अब तक सब विद्वान् और महात्मा इसी का उपदेश करते आये परन्तु मनुष्य को अपने जीवन में यदि कोई कठिन बात मालूम हुई तो यह कि वह दूसरों का मित्र नहीं बन सकता और दूसरे उसके मित्र नहीं बन सकते। परन्तु इसी के साथ हर मनुष्य का यह भी अनुभव है कि जब तक वह दूसरों का मित्र नहीं बनता और दूसरे उसके मित्र नहीं बनते उसका काम नहीं चलता।

प्रायः लोग सोचा करते हैं कि उनको स्वतंत्र होना चाहिए। परतंत्रता बुरी चीज है। एक मंत्र में प्रार्थना है कि *"अदीना स्याम शरदः शतम्" "हम आयुपर्यन्त अदीन रहें।"* अर्थात् न कोई हमारा दीन हो न हम किसी के दीन हों। परन्तु दीनता और परतंत्रता में भेद है। परमात्मा ने हमको न स्वतंत्र उत्पन्न किया न स्वतंत्र रहने के लिए बनाया। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि परमात्मा ने हमको न परतंत्र बनाया न परतंत्र रहने के लिए बनाया। यदि मैं सर्वथा स्वतंत्र हो गया और संसार के समस्त प्राणी भी मेरे समान स्वतंत्र हो गए तो मुझे उनसे न कुछ लेना है न उनको मुझसे। फिर मेरा दूसरों का मित्र होना या दूसरों का मेरा मित्र होना कोई अर्थ नहीं रखता। और यदि में दूसरों के तंत्र के अधीन हूं तो मेरी उनकी मित्रता कैसी ? कोई दास किसी स्वामी का मित्र नहीं होता, न स्वामी दास का। इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में मित्रता नहीं हो सकती और मंत्र प्रतिपादित आकांक्षाएं व्यर्थ हो जाती हैं।

तो क्या मित्र होने के स्थान में हम शत्रु बनें ? बनने का यत्न तो करते हैं। शत्रुता की भावना संसार से दूर नहीं है। हर प्राणी किसी न किसी के लिए वैरभाव रखता है। परन्तु रख नहीं पाता। शत्रुता मित्रता से भी कठिन है। शत्रुता दो धारी तलवार है जिससे अपने हाथ के कट जाने का बराबर भय लगा रहता है। शत्रुता रखने वाले का जीवन हर समय कष्टमय होता है। शत्रुता की आग पहले तुम को जलायेगी फिर तुम्हारे शत्रु को। तुमको तो अवश्य जलायेगी। तुम्हारे शत्रु को जलाने में कभी–कभी संदेह भी हो सकता है।

तो क्या न शत्रुता हो न मित्रता। हम उदासीन रहे? रहिए, यत्न कीजिए परन्तु रह न सकेंगे। क्योंकि सृष्टि–क्रम यह घोषणा करता है कि हम न स्वतंत्र होने के लिए बनाए गए हैं न परतंत्र होने के लिए। सृष्टि का निर्देश है परस्परतंत्रता (Neither dependence nor independence, but interdependence) अर्थात् मैं आपके तंत्र के अधीन रहूं और आप मेरे तंत्र के। मेरा और आपका दोनों का तंत्र एक हो जिसको मैं अपना तंत्र कह सकूं और आप

अपना। मेरे और आपके तंत्रों में द्विधिभाव न हो। इसी का नाम है मित्रता।

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में मित्र शब्द का अर्थ किया है – (ञिमिदा स्नेहने) इस धातु से औणादिक *'क्त्रा'* प्रत्यय के होने से मित्र शब्द सिद्ध होता है। *''मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः'', ''जो सबसे स्नेह करने और सबको प्रीति करने योग्य है। इससे परमेश्वर का नाम मित्र है।''*

और हर जीव को परमेश्वर के गुणों को धारण करना चाहिए, इसलिए हर जीव को भी मित्र होना आवश्यक है। गायत्री मंत्र में प्रार्थना भी है कि हम परमात्मा के गुणों को 'धीमहि' अर्थात् धारण करें। मित्रता परमात्मा का एक महान् गुण है। मित्र में स्नेह अर्थात् चिकनापन होता है। तेल स्नेह है। घी स्नेह है। जल स्नेह है। स्नेह पदार्थों में तरलता होती है। उसके कण अलग रहना नहीं चाहते। रह नहीं सकते। पत्थर का टुकड़ा ठोस है। तो पत्थर के टुकड़ों को कहीं रख दीजिए। वह वहीं ठहरे रहेंगे। एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर न होंगे परन्तु जल या तेल के कणों को आप इस प्रकार अलग नहीं रख सकते। उनकी प्रकृति में है दौड़ कर दूसरे सजातीय कणों से मिल जाना। इसलिए यदि आप उनको मिलने से रोकना चाहे तो बोतल आदि किसी ऐसे पात्र में रखना पड़ेगा जिसकी दीवारों को तरल कण तोड़ न सकें।

प्राणियों की प्रकृति में भी यह तरलता है। हर प्राणी की प्रकृति में। मेरी प्रकृति में और आप की प्रकृति में। आप चाहते हैं कि दूसरों से मिलें, दूसरे चाहते हैं कि आप से मिलें। मिलना हमारे स्वभाव में है। दूर रहना नैमित्तिक है। कारणवश होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टिक्रम के अनुसार प्राणी परस्पर तंत्र बनाए गए हैं। हमारे शरीर के सब अंग एक दूसरे के परस्पर तंत्र हैं। कोई अकेला काम नहीं कर सकता। आँख–पैर की आकांक्षा रखती है और पैर आँख की। पैर के नख और शिर की शिखा दोनों को एक दूसरे की अपेक्षा है। यह अपेक्षा हर मनुष्य को प्रत्यक्ष न होती हो परन्तु शरीर–विज्ञान के वेत्ता इसको भली प्रकार जानते हैं। यह तो हुई शरीर के अंगों की परस्परतंत्रता। अब आप अपने शरीर और दूसरों के शरीरों के सम्बन्धों पर विचार कीजिए। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के बिना नहीं रह सकता। मनुष्य जाति दूसरे प्राणियों के बिना नहीं रह सकती। क्या कोई ऐसा देश है जहां केवल मनुष्य ही रहते हों ? अथवा प्राणियों की केवल एक ही जाति हो। इससे हमको पता लग जाता है कि हम को एक दूसरे की ओर तरल पदार्थों के समान खिंचने की कितनी आवश्यकता है। प्रायः स्वतंत्रता और परतंत्रता के संघर्षों में हम परस्परतंत्रता के आवश्यक तंत्र को सर्वथा भुला देते हैं। यदि इस मूल मंत्र को समझ लें तो हम को न केवल परहित के लिए अपितु आत्म–हित के लिए भी दूसरों की भलाई का विचार करना होगा। सह–अस्तित्व (co-existence) का यही विधान है जिस पर सृष्टि की स्थिति है। परन्तु जीव अल्प है अर्थात् अल्पज्ञ है। वह अपनी अल्पज्ञता को भी भूल जाता है। कहावत है कि मनुष्य दूसरों के धन को अपने धन से अधिक और दूसरों की बुद्धि को अपनी बुद्धि से कम समझता है। बच्चा समझता है कि उसमें उसके पिता या गुरु की अपेक्षा अधिक बुद्धि है। पागल समझता है कि संसार में केवल वही स्वयं बुद्धिमान् अन्य सब पागल हैं। इसलिए मनुष्य को सबसे पहला पाठ यह पढ़ाना चाहिए कि मैं अल्पज्ञ हूँ और अल्प–शक्ति भी हूँ। मुझे अपनी इस अल्पता की अनुभूति होनी चाहिए तभी मेरी उन्नति सम्भव हो सकेगी, जब यह अनुभूति नहीं होती तो मनुष्य स्वार्थी होकर दूसरों से स्नेह करना छोड़ देता है। शत्रुता यहीं से आरम्भ होती है। इससे बचने के लिए स्थिरता की आवश्यकता होती है।

वेदमंत्र में ईश्वर को 'दृति' कहकर पुकारा है। लौकिक भाषा में दृति नाम है चमड़े के थैले का जिसको उर्दू में मशक कहते हैं। दृति में तरल पदार्थ भरा जाता है। दृति चमड़े का वह थैला भी होता है जिस को आधार बनाकर तैराक लोग तैरना सीखते हैं। सायणाचार्य ने ऋग्वेद मंडल ४, सूक्त ४५ के १ ही मंत्र

का भाष्य करते हुए लिखा है:– *''रस द्रव्याधारः पदार्थश्चर्ममयो दृतिरित्युच्यते।''* अर्थात् चमड़े का वह पात्र जिसमें रस द्रव्य रक्खा जाता है यह दृति का लौकिक अर्थ है। सायण के समय में दृति का केवल यही प्रयोग होगा। मंत्रों को विशेष अवसरों पर विशेष विनियोग में लाने के लिए शब्दों के अर्थों को भी उनकी तरलता कम करने के लिए योगरूढ़ि बनाना पड़ा। इसीलिए उव्वट और महीधर आदि भाष्यकारों ने गृह्य या कल्प सूत्रों के आधार पर 'दृति' आदि शब्द भी विशेष अर्थ में प्रयुक्त किए। यज्ञ की भाषा में 'दृति' एक ग्रह अर्थात् पात्र होता है जिसे महावीर ग्रह बोलते हैं। यहां पाठकों को याद रखना चाहिए कि 'ग्रह' का अर्थ नक्षत्र या तारा नहीं है। यज्ञ में यज्ञ के आवश्यक पदार्थ सोमरस आदि रखने के लिए कई छोटे बड़े पात्र होते हैं। उनका नाम 'ग्रह' होता है। महावीर भी वैसा ही एक ग्रह है।

मैं समझता हूं कि दृति में मूल भावना आधार की है। और इसलिए दृति का अर्थ है ईश्वर जो सब का मूलाधार है। 'दृहं' शब्द का अर्थ है *''हमको दृढ़ बना''*। आधार पाकर आधेय में दृढ़ता आ जाती है। मनुष्य में भी परमात्मा के आधार होने पर विश्वास करके धैर्य और स्थैर्य के गुण प्राप्त हो जाते हैं। कभी–कभी स्वार्थवश हम दूसरों की मित्रता को तोड़ बैठते हैं। यह अपनी निर्बलता के कारण होता है। दो मित्र परस्पर शत्रु कैसे बनते हैं ? क्या आपने कभी विचार किया है ? हर घर में ऐसे उदाहरण मिलेंगे की आदि में मित्र थे, कुछ दिनों में शत्रु हो गए। जिन स्त्री–पुरुष–युगल ने अत्यंत प्रेम से विवाह किया था वह एक दूसरे का मुंह देखना नहीं चाहते। जो जातियां एक दूसरे की मित्र हैं कल घोर शत्रु बन जाती हैं। यह परिवर्तन एक क्षण में कभी नहीं होता। इसके लिए समय लगता है, परन्तु मनुष्य को इसकी अनुभूति नहीं होती। अनुभूति का अभाव अनुभूत वस्तु के अभाव का प्रमाण नहीं है। हम एक बालिश्त के शरीर से साढ़े तीन हाथ के हो जाते हैं। बता नहीं सकते कि किस दिन कितने बढ़े। एक क्षण में तो नहीं बढ़ गए। एक और उदाहरण लीजिए। आपने दोपहर को १२ बजे खाना खाया। २ बजे आपसे कोई कहे कि क्या आप भूखे हैं ? आप कहेंगे *''नहीं''*। रात को आठ बजे आप कहेंगे *''मुझे बहुत भूख लगी है।''* यह बहुत भूख आपके शरीर में एकाएक कब घुस गई ? वस्तुतः भूख तो खाना समाप्त होने के बाद ही आरम्भ हो गई थी। इतनी भूख लगना कि आप अनुभव कर सकें। इसमें आठ घंटे लग गए। इसी प्रकार मित्रता का हाल है। पहले एक छोटी सी बात पैदा होती है। इससे कुछ ठेस सी लगती है। फिर वह ठेस बढ़ जाती है। मन–मुटाव इसी का नाम है। फिर खींचातानी आरम्भ होती है और दो मित्र शत्रु बन जाते हैं। यदि हम परस्परतंत्रता के नियम को दृष्टि में रक्खें तो छोटी–छोटी बातों में अपने पैरों को स्थिर रख सकते हैं। और मित्रता दृढ़ रह सकती है, मित्र–मित्र की हिंसा नहीं करता। शत्रु सदा हिंसा की ही बात सोचता रहता है। गर्म युद्ध से पूर्व शीतल युद्ध (Cold war) बनी रहती है। इस प्रकार वातावरण सदा द्वेष पूर्ण बना रहता है।

बहुत से लोग हैं जो मनुष्य के साथ प्यार करने का उपदेश करते हैं। परन्तु मनुष्य से बाहर उनका प्रेम नहीं जाता। वह कभी सोचते ही नहीं कि पशु पक्षियों में भी जीव है। उनके साथ तो सदा क्रूरता का ही व्यवहार होता है। कुछ लोग अपने देशवासियों तक ही मित्रता के भाव को सीमित रखते हैं। कुछ छोटी–छोटी बिरादरियों तक ही प्रेम करना सिखाते हैं। परन्तु वेद ने 'सर्वाणि भूतानि' अर्थात् प्राणीमात्र के साथ मित्रता का उपदेश दिया है। इस उपदेश पर श्रद्धा रखने वाला मनुष्य मांसाहारी नहीं हो सकता। क्योंकि बिना पीड़ा दिए मांस प्राप्त नहीं हो सकता। वह चोरी नहीं कर सकता क्योंकि चोरी करने से दूसरों को कष्ट पहुंचता है।

इतना ही नहीं मित्र हो तो मित्र के लाभ की बात भी सोचते रहना चाहिए। इसलिए महात्मा लोग दूसरों को कष्टों से बचाने में भी सदा यत्न शील रहते हैं। *''परोपकाराय सतां विभूतयः।''* वह संसार कितना अच्छा संसार होगा जिसमें सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और दूसरे मुझको *''मा विद्विषावहै।''* इसमें से कोई किसी के साथ शत्रुता न करे। ************

समस्त समस्याओं का समाधान संस्कृत से

– ✍ डॉ. आशीष यादव
मोब.नं – 8010565561

" विश्वे सम्प्रति समस्यानां कश्चिच्चयो जरीजृम्भते। यथा यथा विज्ञानाऽऽविष्कृतभोगवस्तुसौविध्यवशादस्माकं सुखैषणा परं शिखरमारोहति तथा तथाऽस्माकमान्तरिकी नैसर्गिकी शक्तिर्भोगाभ्यासमनुकुर्वती प्रतिक्षणं क्षयत्वमामन्त्रायते। नक्तन्दिवं जरीजृभ्यते परत्वरागः। अन्धे तमसि निलीनाऽऽत्मीयता न कस्यचन नयनपथमायाति। परिस्थितिरियं जटिलतमं समस्यासंसारं सृजति। यस्माद्भ्रष्टाचारोत्कोचसमस्या, रागद्वेषसमस्या, चरित्राहानिसमस्या, सत्तालोभसमस्या, कर्त्तव्यबोध्समस्या, धर्मनिर्वहनसमस्या, बालापराध्समस्या, आर्थिकोपनिवेशसमस्या पर्यावरणसमस्याश्च विशेषेणानावृतवदना सत्यो लोकेऽस्मिन प्रादुर्भवन्ति। एतासां सर्वासां समस्यानां समाधनाय यदि नाम किमपि भाषासाहित्यं सक्षमं तु तद् वर्तते संस्कृतभाषासाहित्यं, तदपरिमितं वाङ्मयम्। कथमिदं संस्कृतं बिभर्ति क्षमतां समस्यासमाधनस्य एतदुच्यते। "

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिरित्युद्घोषयन्ती अस्माकं शास्त्रकाराणां धारणा भूतवर्तमानभविष्यत्कालिकं समग्रमपि गुणसङ्घातं संस्कृतोत्सङ्गे विद्यमानमनुभवति। वेदवाङ्मयादरभ्यार्वाचीनवाङ्मयपर्यन्तं संस्कृतसाहित्यं विधिनिषेधमुखरैः सिद्धान्तप्रतिपादनैः सर्वथापरिवृतं वर्तते। यथा नास्ति सत्यात्परो धर्मः, धर्मोरक्षति रक्षितः, स्वधर्मे निधनं श्रेयः, कर्मण्येवाधिकारस्ते, मागृधः कस्यस्विद्धनम्, रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत् इति इमा पङ्क्तयः मानवेभ्यः सर्वदा निसर्गजं शिवसन्देशं वितरन्ति। किन्तु मानवो हृदयतो न शृणोति एतासां सर्वथोदात्ततमं मानवतामर्मरहस्यम्। निरर्गलं सञ्चरन् सुखाभिलाषैर्निर्माणं करोति समस्याप्रपञ्चं, पुनश्च परिवृत्तः समस्याराक्षसीभिरनुदिनं क्षायति, अन्ते च प्रार्थयते परमेश्वरं स्वकीयशिवहेतवेऽस्तित्व रक्षणाय च। अतः यदि अस्माकं संस्कृतवाङ्मयस्य सन्देशजलकणिकाभिः बाह्यतः आभ्यन्तरश्च मानवानामभिषेको भूयात्, मनसा वाचा कर्मणा च चरित्रो तदाधानं यदि भवेत् तदा विश्वस्य प्रायशः समस्यानां समाधनं भवितुर्महति।

"मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।"

विज्ञायते एतद्भ्यः क्व नारीसन्त्राससमस्या, क्व च भ्रष्टाचारोत्कोचसमस्या। 'आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स च पण्डितः' इति ज्ञाते कुत आयति, वा आयास्यति, रागद्वेषसमस्या। वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वा वृत्ततस्तु हतो हतः साक्षात्कृते एतद्दर्शने कथमुद्भविष्यति चरित्रहानिसमस्यासंस्कारः।'

'*कुर्वन्नेवेह* कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे'', चरितार्थितायामेतस्यां नावलोकयितुं शक्यते क्वचिदपि कर्तव्यबोधसमस्या। अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुब्कमिति स्वीकृते, कः परः कश्चापरः न कुतोऽप्यनुमीयते। अस्माकं संस्कृता वाक् समग्राणां मानवानां भाषा, तथैव समग्रमानवजात्याः अभ्युदयकांक्षिणी ज्योतिष्मती दृष्टिः। सृष्ट्याः सर्वेषु कणेषु भगवतः अंशं पश्यति अस्माकं संस्कृतमनीषा। तृणं जलं पशु पृथ्वीम् आकाशं सर्वमपि ब्रह्माण्डतत्त्वं प्रणमति संस्कृतचिन्तपद्धतिः। मानवः प्रकृत्याः क्रोडे, तत्स्नेहलोके तदूर्जोद्रेके हि मानवः अन्यथा दानवः।

वेदादारभ्य काव्यपर्यन्तं व्याप्तो ज्ञान–विज्ञानप्रदायकः सर्वेऽपि दुःखनिवारकः एव। वेदाध्ययनप्रारम्भे गुरुशिष्यमुपदिशति– "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भवेति।" एतदुपदेशं मनसि कृत्वा यः प्रवर्तते तस्माद् बिभेति समस्या। पारमार्थिकं वैदिकञ्च तत्त्वं प्रकाशयन्त्युपनिषदः। न्यायादिनि शास्त्राणि प्रपञ्चं प्रपञ्चयन्ति। मनसः निर्मलतायामेव सर्वं स्वांशीकर्तुं प्रभवन्ति मानवाः। मानसिकविकासा यातिरमणीयाः हृदयहारिणः काव्यनाटकादयः यथारुचि समुपलभ्यन्तेऽत्रा। किं बहुना केवलम् एकमेव महाभारतं बहूनां समस्यानां निवारणायालम्। शास्त्रकाव्यच्छायान्वयिनि महाभारते किं नास्ति। तत्रा वृष्णिपाण्डवविरसावसानवैमनस्यदायिनी समाप्तिमुपनिबध्नता भगवता कृष्णद्वैपायनेन मोक्षलक्षणः

पुरुषार्थः शान्तो रसश्च प्रकाशितः। महाभारते दृश्यमानः, बाह्यः प्रपञ्चः स्वार्थजटिलः। उदाहरणतया गृध्रगोमायुसंवादः गृह्यताम्।

"अलं स्थित्वा श्मशानेऽस्मिन् गृध्रगोमायुसंकुले।
कङ्कालबहले घोरे सर्वप्राणिभयङ्करे।।
न चेह जीवितः कश्चित्प्राणिधर्ममुपागतः।
प्रियो वा यदि द्वेष्यः प्राणिनां गतिरीदृशी।।"

इति दिवा मांसभक्षणसमर्थः गृध्रः एवंप्रकारेण श्मशानं प्रापितस्य मृतबालकस्य बन्धून् शीघ्रं गन्तुपदिशति। दिवा असमर्थः गोमायुः वदित –

"आदित्योऽयं स्थितो मूढाः स्नेहं कुरुत साम्प्रतम्।
अमुं कनकवर्णाभं बालमप्राप्तयौवनम्।
गृध्रवाक्यात्कथं मूढास्त्यजध्वमविचारिता।।" इति।

एतस्मात्सांसारिकस्य स्वार्थजटिलता सम्यक् स्फुटीकृता। महाभारते कौरवपाण्डवचरितं यत्प्रकाश्यते तत्सर्वं संसारस्य निःसारतां द्योतयति। तादृशेऽस्मिन्नसारे संसारे सुखप्राप्तये अधार्मिकमपि मार्गं स्वीकृत्य प्रवृत्तः मनुष्यः समस्यासंकुलः कथं न भविष्यति? भविष्यत्येव।

"धृतिः क्षमा दया शौचं कारूण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणाञ्चानभिद्रोहः सप्तैताः समधिः श्रियः।।"

अतः संस्कृतवाङ्मयमन्दाकिन्यां सर्वैः विश्वव्याप्तैर्मानवैः स्नानं करणीयम्। शिवत्वसंवलितानां रहस्यकणानां साक्षात्कारः करणीयः। सर्वथा साक्षात्कृते संस्कृतवाङ्मये सर्वाः विश्वसमस्याः तिरोहिता भविष्यन्ति। निष्कर्षतः कथ्यते यत् वस्तुनः स्वीयगर्भोपन्यस्तनैतिकैर्मूल्यैः पुण्योत्थानपापाधः पतनसम्बद्धैर्निदर्शनैर्विश्वमेकनीडं वसुधैव कुटुम्बकमित्युद्घोषयन्तीभिर्विश्वबन्धुत्वमुद्गिरन्तीभिर्व्यापक–जीवनदर्शनसम्बन्धिनीभिरुक्तिभिस्त्यागशान्तिसन्तोषविषयकैर्मर्मवचोभिस्सम्बन्धरहस्यनिरूपणनिपुणाभिरनन्तकथाभि संस्कृतं समग्रमपि मलिनमलिनं बाह्याभ्यन्तरपरिवेशं पवित्रीकर्तुं किं वा तत्परिवर्तन सौष्ठवाय सर्वात्मना शक्नोति। पर्यावरण विज्ञानं, जलविज्ञानं, खगोलविज्ञानं, भूगर्भविज्ञानं, भौतिकरसायनवनस्पतिजीवनजन्तुविज्ञानादिकं भौगोलिकीं संसार प्रकृतिंसत्यस्थितिश्ञ्च सर्वथा समुद्घाट्य संस्कृतजगदिदंसर्वसमस्याविरहितममन्दानन्दसन्दोहसंवलितं कर्तुं सर्वोपयोगि भाषावाङ्मयमिति विश्लेषणैर्विज्ञायते प्रमाणीक्रियते इति शम्।

****

आर्यों से अपील

यथायोग्य व्यवहार बढाओ

दयानन्द सम अग्नि वर्षा कर, आर्य जाति की लाज बचाओ।
समय यही है कमर कसो, शास्त्रार्थों का युग वापस लाओ।।
उठो वेद के भक्तों जागो,
निज पौरुष को पुनः सजाओ।। १

कुरुक्षेत्र सज चुका पुनः, अब दुर्योधन ने कमर कसी है।
फूट,अविद्या, घृणा, द्वेष की, नागिन घर घर आन बसी है।
धर्म पाप के महासमर मे, अर्जुन बन गाण्डीव उठाओ।।
उठो वेद के भक्तों जागो,
निज पौरुष को पुनः सजाओ।। २

शिशुपालो बदनाम करो मत, दे देकर मोहन को गाली।
सभी मूकदर्शक बन जाते, सूख रही सारी हरियाली।
दानवता का अट्टहास है, पुनः सुदर्शन चक्र चलाओ।।
उठो वेद के भक्तों जागो,
निज पौरुष को पुनः सजाओ।। ३

पाखण्डों की लंका धू धू, कहो जलाने को न चलोगे।
मौन रहोगे, व्यंग्य सहोगे, अकर्मण्य बन हाथ मलोगे।
पुरखों की पगडण्डी धूमिल, रौंदो खर पतवार जलाओ।।
उठो वेद के भक्तों जागो,
निज पौरुष को पुनः सजाओ।। ४

जनता मे अज्ञान अनय की, गुरुडम से घुसपैठ है जारी।
मत मजहब की पौ बारह है, बरबस होती है तैयारी।
प्रीति पूर्वक, धर्म धुरन्धर, यथायोग्य व्यवहार बढ़ाओ।।
उठो वेद के भक्तों जागो,
निज पौरुष को पुनःसजाओ।। ५

–✍ आचार्य संजय सत्यार्थी
आर्योपदेशक, बिहार
सं॰ सूत्र – 90066668

महर्षि दयानन्दकृत ओंकार–अर्थ–अनुशीलन

– ✍ प्रियांशु सेठ

ईश्वर का निज नाम 'ओ३म्' है। इस नाम में ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है। यदि परमात्मा कहें तो इसके कहने से सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा इसी अर्थ का बोध होता है, न कि सर्वशक्ति, सर्वज्ञान आदि गुणों का। सर्वज्ञ कहने से सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान् कहने से ईश्वर सर्वशक्तियुक्त है, इन्हीं गुणों का बोध होता है, शेष गुण–कर्म–स्वभाव का नहीं। 'ओ३म्' नाम में ईश्वर के सर्व गुण–कर्म–स्वभाव प्रकट हो जाते हैं। जैसे एक छोटे–से बीज में सम्पूर्ण वृक्ष समाया होता है, वैसे ही 'ओ३म्' में ईश्वर के सर्वगुण प्रकट हो जाते हैं। महर्षि दयानन्दजी महाराज अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास में ओ३म् को ''अ, उ, म्'' इन तीन अक्षरों का समुदाय मानते हैं। स्वामीजी को अ से अकार, उ से उकार तथा म् से मकार अर्थ अभीष्ट है। इन शब्दों से उन्होंने परमात्मा के अलग–अलग नामों का ग्रहण किया है– अकार से विराट, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि।

संस्कृत भाषा में पदान्तरों के अक्षर लेकर स्वतन्त्र शब्दों का प्रयोग होता है। इसपर शौनक ऋषि का मन्तव्य है– ''शब्दों में धातु, उपसर्ग तथा अन्य शब्दों के अवयवों की भी ध्वनियां होती हैं। वे शब्द एक धातु के भी बने होते हैं और कुछ शब्द दो धातुओं से बनते हैं तथा कुछ शब्द बहुत धातुओं से बनते हैं। वे शब्द पांच प्रकार के होते हैं (बृहद्देवता २/१०३,१०४)।''

१. धातु से बने शब्द – अग्नि आदि।

२. धातुओं से बने शब्दों से बनाये हुए शब्द – रत्नधा+तमम्।

३. उपपद रखकर बने शब्द– यन् जः = यज्ञः।

४. वाक्य से बने शब्द– इति + ह + आस = इतिहास।

५. बिखरे हुए अवयवों से बने शब्द – अ, उ, म् = ओ३म्।

महाभाष्यकार ने भी स्पष्ट घोषणा की है– *'बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति (१/३/१)'*। जब एक–एक धातु अनेक अर्थ होंगे तो उनसे निष्पन्न शब्द भी अनेकार्थवाची होंगे। अन्य भाषाओं में भी दूसरे शब्दों के अवयव लेकर एक स्वतन्त्र शब्द का निर्माण हुआ है। उदाहरण के लिए, जैसे अंग्रेजी भाषा में एक शब्द 'News' है, जिसका अर्थ है– समाचार–खबर अर्थात् चारों तरफ से जो बातें आती हैं उसको समाचार कहते हैं। लेकिन इनका आदि अक्षर अंग्रेजी भाषा में चारों दिशाओं के नामों को भी प्रकट करता है –

North– उत्तर दिशा
East – पूर्व दिशा
West– पश्चिम दिशा
South– दक्षिण दिशा

इसी तरह ''अ, उ, म्'' इन तीनों अक्षरों का समुदित रूप यह 'ओ३म्' है। यथा–

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा, अकार, उकार, मकार इति।। **– माण्डूक्यो०**

अर्थात् – यह आत्मा (परमात्मा) अक्षर में अधिष्ठित है। वह अक्षर ओंकार=ओ३म् है। वह ओंकार मात्राओं में अधिष्ठित है और वे मात्राएं अकार, उकार, मकार हैं।

माण्डूक्योपनिषद् का ऐसा सिद्धान्त प्रतीत होता है कि यह दो धातु और एक उपसर्ग से 'ओ३म्' शब्द की सिद्धि मानती हो। श्रुति ६,१०,११ में ''अप'' धातु से 'अ', ''उत्'' उपसर्ग से 'उ' और ''मा'' वा ''मि'' धातु से 'म्' लेकर ''ओ३म्'' शब्द की सिद्धि करती है। यथा –

''अकारः प्रथमा मात्रा–आप्तेः, आदिमत्वाद् वा।
उकारो द्वितीया मात्रा उत्कर्षात्, उभयत्वाद् वा।
मकारस्तृतीया मात्रा–मितेः, अपीतेर्वा।''

अर्थ– अकार प्रथम मात्रा है, अकार का अर्थ है– व्याप्ति और आदि। उकार दूसरी मात्रा है, उकार का अर्थ है– उत्कर्ष और उभयादि। मकार तीसरी मात्रा है, मकार का अर्थ है– मिति और अपीति आदि।

[आप् धातु या आदि शब्द का आ ह्रस्व करके– 'अ'। उत्कर्ष या उभय शब्द का– 'उ'। मिति अथवा अपीति–समाप्ति सूचक का प् 'म्' होकर– 'म्'।]

महर्षि के अर्थ पर विचार – महर्षि दयानन्द द्वारा किए प्रत्येक शब्द का अर्थ उनके स्वाध्याय–चिन्तन को हमारे

समक्ष प्रबलता से स्थापित करता है। आर्ष शास्त्रों के अनुसार अकार, उकार तथा मकार का महर्षिकृत अर्थ परस्पर सम्बन्ध रखनेवाला है। देखो–

१. शतपथब्राह्मण (६/२/२/३४, ६/३/१/२१, ६/८/२/१२, ६/१/१/३१) में 'विराडग्निः' आया है; अतः विराट् अग्नि का नाम है। शतपथब्राह्मण (७/३/१/२२) ने 'इयं (पृथिवी) वाऽग्निः' लिखकर घोषणा की है कि यह पृथ्वी अग्नि है। आगे पृथ्वी को विश्व बताते हुए शतपथब्राह्मण (६/३/१/३) में कहा है– *'स यः स वैश्वानरः। इमे स लोका ऽइयमेव पृथिवी विश्वं'* अर्थात् ये लोक वैश्वानर है, यह पृथिवी विश्व है। शतपथब्राह्मण ने 'वैश्वानरो वै सर्वेऽग्नयः (६/२/१/३५, ६/६/१/५)' अर्थात् सब अग्निया वैश्वानर है लिखकर अग्नि को वैश्वानर स्वीकार किया है। विश्व और वैश्वानर शब्द का एक ही अर्थ है। इसकी पुष्टि करते हुए शतपथ० (१३/३/८/३) में कहा है– 'इयं (पृथिवी) वै वैश्वानरः' अर्थात् यह पृथिवी वैश्वानर है।

विश्व शब्द पर स्वामी दयानन्दजी का मन्तव्य है– *''विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन्। यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः* (स०प्र०, प्रथम समुल्लास) अर्थात् जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इन में व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'विश्व' है।''

निरुक्तभाष्यकार दुर्गाचार्य का वैश्वानर शब्द पर भी यही मत है। यथा–

''प्रत्यृता सर्वाणि भूतानि'' विश्वानि ह्यसौ भूतानि प्रति ऋतः प्रविष्ट इत्यर्थः। ''तस्य'' विश्वानरस्य अपत्यं ''वैश्वानरः''।

– निरुक्त, दैवतकाण्ड ७/२१/१ पर दुर्गाचार्यकृत टीका, पृष्ठ ६०२, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, १९६६ से प्रकाशित

वैश्वानर शब्द का एक यह भी अर्थ है कि जो पूर्णरूप से सब भूतों में प्रविष्ट है, उसको वैश्वानर कहते हैं।

अतः अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि का ग्रहण शास्त्र सम्मत है।

२. शतपथब्राह्मण (६/२/२/५) में आता है– 'प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः' अर्थात् हिरण्यगर्भ प्रजापति है। शतपथ० ने 'स एष वायुः प्रजापति (८/३/४/१५)' प्रजापति को वायु स्वीकार किया है। ऐतरेय० (४/२६) में भी कहा है– '*वायुर्ह्येव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा पवमानः प्रजापतिरीति।* तैत्तिरीय ब्राह्मण में वायु को तैजस बताया है *'(तेजो वै वायुः –३/२/६/१)'*।

इससे स्पष्ट है कि हिरण्यगर्भ, वायु और तैजस नामों का उकार से ग्रहण शास्त्रों के अनुकूल है।

३. माण्डूक्योपनिषद् की श्रुति ११ में मकार को 'माङ्' धातु का कहा है, अर्थात् जो मापनेवाला, न्याय व शासन करनेवाला है। न्याय वा शासन करनेवाला ईश वा ईश्वर है। अथर्ववेद (११/४/१) में उसे सबका स्वामी बताया है– *'यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्'।* दर्शनशास्त्र के अनुसार ईश्वर के बिना कर्मफल की व्यवस्था नहीं हो सकती, यथा– *'ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् (न्याय० ४/१/१९)'।* इससे सिद्ध है कि ईश्वर ही शासनकर्त्ता व न्यायकर्त्ता है। शतपथब्राह्मण (६/१/३/१७) में आया है–*'आदित्यो वा ईशानः आदित्यो ह्यस्य सर्वस्येष्टे।* स्पष्ट है कि ईशान और आदित्य पर्यायवाची हैं। बृहदारण्यक (४/३/२१) के अनुसार–*'अयं पुरुष प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन् वेद नान्तरम्'* अर्थात् यह पुरुष (जीवात्मा) प्राज्ञेनात्मना (परमात्मा) के साथ सम्पर्क में आया हुआ न कुछ बाहर जानता है, न अन्दर। इससे स्पष्ट हुआ कि जीवात्मा आप्तकाम, आत्मकाम और निष्काम होकर सभी दुःखों से छूट जाता है अर्थात् यह न्यायरूपी फल उसे ईश्वर देता है। सिद्ध है, प्राज्ञ और ईश्वर पर्यायवाची हैं। अतः मकार से आदित्य, ईश्वर और प्राज्ञ का ग्रहण स्पष्ट है।

संस्कृत के प्रायः सभी शब्द आख्यातज हैं – प्रकृति–प्रत्यय के योग से निष्पन्न हैं। इसी कारण वे यौगिक कहाते हैं। आदि, उभय और अपिति के आधार पर महर्षि का किया अर्थ वेदादिशास्त्रों के अनुकूल है। गोपथब्राह्मण (१/५) में तो 'अ, उ, म्' को क्रमशः ब्रह्मा (उत्पत्तिकर्त्ता), विष्णु (पालनकर्त्ता) और शिव (संहारकर्त्ता) का वाचक बताया है। मैत्र्युपनिषद् (६/८) में आया है– *'एवं हि खल्वात्मेशानः शम्भुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृग्घिरण्यागर्भः'*। यहां आत्मा, ईशान, शम्भु, भव, रुद्र, प्रजापति, विश्वसृक् और हिरण्यगर्भ परमात्मा के नाम हैं। यजुर्वेद (३२/१) में परमात्मा के अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः और प्रजापति– ये नाम हैं। तात्पर्य यह है कि अ, उ, म् पृथक्–पृथक् ईश्वर के भिन्न–भिन्न नामों के वाचक अर्थात् परमात्मवाची हैं।

महर्षि के अर्थ में उपनिषद् का प्रमाण –

माण्डूक्योपनिषद् में अकार का सम्बन्ध विश्व, उकार का सम्बन्ध तैजस एवं मकार का सम्बन्ध प्राज्ञ से किया है। यथा–

१. *जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः* प्रथमा मात्रा (माण्डूक्य० ६) अर्थात् ओ३म् की प्रथमा मात्रा अकार= 'अ' है। उसका सम्बन्ध जागरित स्थान से है और वह वैश्वानर= विश्वानर = विश्वसम्बन्ध है।

२. *स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो* द्वितीया मात्रा (माण्डूक्य० १०) अर्थात् ओ३म् की द्वितीया मात्रा उकार = 'उ' है। उसका सम्बन्ध स्वप्नस्थान से है और वह तैजस् है।

३. *सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो* मकारस्तृतीया मात्रा (माण्डूक्य० ११) अर्थात् ओ३म् की तृतीया मात्रा मकार = 'म्' है। उसका सम्बन्ध सुषुप्तिस्थान से है और वह प्राज्ञ है।

माण्डूक्योपनिषद् की इस श्रुति में जीवात्मा की तीन अवस्थाओं का वर्णन है जिसका सम्बन्ध ईश्वर से है।

जागरितावस्था– सब पादों से पहला विश्वनामापाद तीनों पादों में व्यापक है अर्थात् जीव की स्वप्न, सुषुप्ति आदि सब अवस्थाओं में जाग्रतावस्था का प्रभाव रहता है।

स्वप्नावस्था– तैजस नाम का जो दूसरा पाद है यह विश्व पाद की अपेक्षा उत्कृष्ट और विश्व तथा प्राज्ञ दोनों के बीच में है। जो इस पाद को भलेप्रकार जानता है वह अपनी ज्ञान–सन्तति को नित्य बढ़ाता है।

सुषुप्तावस्था– तीसरा पाद प्राज्ञ अपिती का देनेहारा है। इसको जानने के बाद जीवात्मा लय हो जाती है।

यहां एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब यहां जीव की अवस्था का प्रकरण है तो अकार, उकार और मकार का सम्बन्ध ईश्वर से किस प्रकार है? इसका उत्तर यह है कि उन तीनों अवस्थाओं का मूल ईश्वर ही है। आदि (जागरित)= वह जीव शरीर में व्याप्त होने से कामनाओं को प्राप्त होता है और इस प्रकार वेद जानता है। उभय (स्वप्न)= वह परमात्मा से सम्बन्ध करता है जिससे बाह्य ज्ञान अल्प होता है और सुख की वृद्धि होती है। अपिती (सुषुप्ति)= बाहर का सम्बन्ध टूटने के बाद बाह्य ज्ञान बन्द हो गया (जीवात्मा के अस्तित्व की अनुभूति हो गयी) जिससे वह दुःखों से छूट गया और सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म में लीन हो गया।

ओंकारोत्पत्ति एवं सिद्धि (भ्रान्ति–निवारण)

ओ३म् परमात्मा का मुख्य नाम है, वेदादि सत्य शास्त्र ऐसा कथन करते हैं। 'ओ३म्' शब्द की सिद्धि शब्द–तत्त्ववित् पाणिनि ने *'अव'* धातु से माना है। उन्होंने धातुपाठ में *''अव''* धातु के रक्षादि १६ अर्थ बताए हैं। उणादिकोष के सूत्र *''अवतेष्टिलोपश्च* (१/१४१)'' के अनुसार अव धातु से 'मन्' प्रत्यय और प्रत्यय के 'टि' का लोप हो जाता है तब *''अव़म्''* ऐसी स्थिति होती है। तब *छ्वरत्वरस्त्रिव्यविभवामुपधायाश्च''* – शब्दानु० ६४/२०, ''अव'' की जगह उठ् आदेश होकर 'उ़म्' स्थिति होती है और गुण होकर ''ओ३म्' बनता है। गोपथब्राह्मण के प्रपाठक १ की २६वीं कण्डिका में ''आप्लृ'' धातु से ''ओ३म्'' शब्द की सिद्धि की है। यहां भिन्न–भिन्न धातुओं से 'ओ३म्' शब्द की सिद्धि में सन्देह नहीं करना चाहिए कि आचार्यों में परस्पर–विरोध है। देखिए, पाणिनि ने यह कहीं नहीं कहा है कि केवल 'अव' धातु से ही ओंकार की सिद्धि होती है। उनके व्याकरण के अनुसार अव, आप् आदि सब धातु से ओ३म् सिद्ध हो सकता है [द्रष्टव्य– अष्टाध्यायी ६/३/१०६।]

जैसे श्वास के बिना मनुष्य एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता, वैसे ही ओंकार की उपासना के बिना मनुष्य जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है। यदि परमात्मा वेदज्ञान् का प्रकाश नहीं करता तो यह अल्पज्ञ जीव दुःख के बन्धन से कभी न छूट सकता। इसलिए परमात्मा ने वेदज्ञान का प्रकाश किया एवं इसमें 'ओ३म्' नाम को उपासनीय बताकर जीवात्मा के कैवल्यप्राप्ति का द्वार खोला है। यजुर्वेद (४०/१५) में आया है– ''ओ३म् क्रतो स्मर'' अर्थात् हे कर्मशील जीव! मरण समय में उसी ओ३म् का स्मरण कर। ऋग्वेद (१/१६४/३६) में कहा है– *''ईश्वर की ओर चले बिना कोई व्यक्ति मृत्यु के पार नहीं होता।''* माण्डूक्योपनिषद् की पहली श्रुति ही में ''परमेश्वर का प्रधान और निज नाम 'ओ३म्' को कहा है, अन्य सबको गौणिक नाम बताया है।'' छान्दोग्योपनिषद् (१/४/१) ने यहां तक कह दिया है कि ''(ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं।'' कठोपनिषद् का ऋषि कहता है– ''सब वेद सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं, उसका नाम 'ओ३म्' है (वल्ली २, मन्त्र१५)।'' आगे कहा है– ''इसका रूप (आँखों से) देखने के लिए नहीं है, न कोई आँखों से इसको देख सकता है। यह हृदय से, बुद्धि से, मन से प्रकाशित होता है। जो जानते

हैं, वे अमृत हो जाते हैं (कठ० ६/६)।''

ओ३म् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐतरेयब्राह्मण ५वीं पञ्चिका के ३२वें खण्ड में आता है –

''प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान् स्यामिति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इमान् लोकान् असृजत पृथिवीम् अन्तरिक्षम् दिवम्। तान् लोकान् अभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींषि अजायन्त। अग्निरेव पृथिव्या अजायत। वायुरन्तरिक्षात्। आदित्यो दिवः। तानि ज्योतींषि अभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त। ऋग्वेद एव अग्नेरजायत। यजुर्वेदो वायोः। सामवेद आदित्यात्। तान् वेदान् अभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त। भूः इत्येव ऋग्वेदादजायत। भुव इति यजुर्वेदात्। स्वः इति सामवेदात्। तानि शुक्राण्यभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त। अकारः उकारः मकारः इति। तान् एकधा समभरत्। तत् ओम् इति।''

अर्थ – प्रजापति परमात्मा ने इच्छा की कि मैं प्रजा के द्वारा विस्तार को प्राप्त हो जाऊं। उसने ईक्षण किया। उसने ईक्षण करके इन लोकों को उत्पन्न किया– पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को। उन लोकों का ईक्षण किया। ईक्षण किये गए उन लोकों से तीन ज्योतिः स्वरूप ज्ञानी हुए। पृथिवी से अग्नि ही हुआ। वायु अन्तरिक्ष से। आदित्य द्यु लोक से। उन ज्योतिःस्वरूपों का ईक्षण किया। उन ईक्षण किये हुए ज्योतिःस्वरूपों से तीन वेद उत्पन्न हुए। अग्नि ऋषि से ऋग्वेद ही उत्पन्न हुआ। यजुर्वेद वायु ऋषि से। सामवेद आदित्य ऋषि से। उन वेदों का ईक्षण किया। उन ईक्षण किये हुए वेदों से तीन शक्तिशाली शब्द निकले। भूः यह ही ऋग्वेद से निकला। भुवः यह यजुर्वेद से। स्वः यह सामवेद से। उन शक्तिशाली शब्दों का ईक्षण किया। उन ईक्षण किये हुए शब्दों से तीन वर्ण निकले, अ, उ म्। उन तीनों को एक प्रकार से एकत्र इकट्ठा किया। वह ओ३म् बन गया।

इस कण्डिका का सार यह है कि परमात्मा ने अपनी ईक्षण शक्ति से तीन लोकों को उत्पन्न किया। फिर उस लोक से उत्पन्न हुए ऋषियों को वेदों का प्रकाश किया। (त्रयोवेदाः) यहां तीन वेद से तात्पर्य त्रयी विद्या का जानना चाहिए। (त्रयःवर्णाः) इन वेदों से ईश्वर के सर्वगुणों के वर्णन करनेवाले तीन शब्द उत्पन्न हुए। वर्ण शब्द विशेषणगर्भित पद है। इसका अर्थ अक्षर नहीं है किन्तु ब्रह्म का हम लोग जिस पद से वर्णन कर सकते हैं उसे वर्ण कहते हैं। (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) ये तीन पद हैं। उन तीनों पदों के मिलने पर 'ओ३म्' पद बना।

महाराज मनु कहते हैं –

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान् निरदुहत् भूर्भुवः स्वरितीति च।। – मनु० २/७६

अर्थ – प्रजापति ने अकार, उकार और मकार को ऋक् यजु साम इन्हीं वेदों से तथा भूः भुवः स्वः ये महाव्याहृतियां दुहीं – सार भूत निकाली।

ईक्षण शक्ति पर विचार

परमात्मा के ईक्षण शक्ति का वर्णन ऋग्वेद १०/१६०/१, वेदान्तदर्शन १/१/५, ऐतरेयोपनिषद् १/१, छान्दोग्योपनिषद् ६/२/३ इत्यादि स्थलों पर भी आया है। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में प्रश्नोत्तर–रूप में बताते हैं –

(प्रश्न) ईश्वर में इच्छा है वा नहीं।

(उत्तर) वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिस की प्राप्ति से सुख विशेष होवे तो ईश्वर में इच्छा हो सके। न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम और पूर्ण सुखयुक्त होने से सुख की अभिलाषा भी नहीं है। इसलिये ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं, किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है वह ईक्षण है।

ब्रह्म चेतन सत्ता है। क्रिया करना चेतन सत्ता का स्वाभाविक गुण है। यदि वह क्रिया न करे तो इससे उसकी चेतनता पर प्रश्नचिह्न लगता है। क्योंकि परमात्मा चेतन होने के कारण क्रिया करता है इसलिए उसने अपनी ईक्षण शक्ति से लोकों को उत्पन्न किया और वेदों की उत्पत्ति की। वेदज्ञान के माध्यम से लोकों के पदार्थों को लोगों ने जाना, इसी को कहा है कि मैं (ब्रह्म) प्रजा के द्वारा विस्तार को प्राप्त हो जाऊं। ईश्वर की यह अद्भुत ईक्षण शक्ति से ही सब सृष्टि की उत्पत्ति होती है और वह वेदज्ञान का प्रकाश करता है। इससे ब्रह्म की चेतनता सिद्ध है।

अतः ओंकार के अर्थ पर स्वामी दयानन्दजी का गूढ़ चिन्तन वैदिक विचारधारा एकेश्वरवाद का पोषण करता है। मनुष्य जाति में फैले ईश्वर विषयक भ्रांतिपूर्ण विचारों जैसे अनेकेश्वरवाद आदि पर महर्षि ने सप्रमाण प्रहार किया और लोगों को ईश्वर के सत्य स्वरूप से परिचित कराया। ईश्वर विषयक स्वामीजी की निर्भ्रान्त धारण थी। स्वामीजी ने वेदादि सत्य शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार सबको दिया एवं अपने तप और पुरुषार्थ के बल पर वेद को स्वतःप्रमाण (ईश्वरीय ज्ञान) सिद्ध कर मनुष्य जाति में फैले अन्धविश्वास को खुली चुनौती दी। वेदों के उद्धार में स्वामी दयानन्दजी महाराज का योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा। ********

सत्यार्थ प्रकाश में आधुनिक विज्ञान

–✍ वेदप्रकाश गुप्ता
लखनऊ (उ. प्र.)

हम आधुनिक विज्ञान को विज्ञान भी कहते हैं जो वर्तमान के अधिकाशं विद्यालयों मे पढ़ाई जाती है। इसी विषय के पढ़े बच्चे इंजीनियर, डाक्टर, अंतरिक्ष विज्ञानी आदि भी बनते हैं। हम सभी जानते हैं कि ऋषि दयानन्द जी विज्ञान के ज्ञान को बहुत अधिक महत्व देते थे क्योंकि इसी के द्वारा बहुत से तथ्यों की सत्यता परखी जा सकती है। हम विज्ञान के आधार पर दैनिक जीवन के कई कार्यकलापों एंव कर्मकाण्डों की उपयोगिता, प्रक्रिया, सर्वलाभदायक या हानिकारक होने को जान सकते हैं एंव सिद्ध कर सकते हैं। विज्ञान के ज्ञान को ही हम उत्तरोत्तर वृद्वि कर हम नये–नये सत्य तथ्यों एंव उपकरणों का अविष्कार कर रहे हैं। जब स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकों को लिखा होगा, उस समय करीब 1870 में, पूरे भारत में 5 से भी कम विश्वविद्यालयों और 50 से भी कम कालेजों में ही विज्ञान की शिक्षा दी जाती रही होगी और उस समय विज्ञान का ज्ञान, आज की अपेक्षा नगण्य रहा होगा। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में अपने उत्तर के समर्थन में उस काल में उपलब्ध विज्ञान के पुस्तकों के ज्ञान के आधार पर कई वैज्ञानिक तथ्यों को लिखा है जो आज भी विज्ञान के अनुसार उचित, अनुकरणनीए एंव मान्य है जिसका एक उदाहरण है, सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4 के पहले पृष्ठ पर लिखा तथ्य कि "निकट सम्बंधियो में विवाह न करने का कारण" लिखा है, जो वर्तमान के विज्ञान के शोधों से भी सिद्ध हुआ है। गूगल सर्च पर लिखे वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार, एक अध्ययन से पता चला है कि निकट सम्बंधियों में विवाह करने वालों में से 97 प्रतिशत् परिवारों के बच्चे अनुवांशिक रोग से पीड़ित थे। उन्होंने विज्ञान का ज्ञान अपने शिष्यों से ही प्राप्त किया होगा क्योंकि उस समय विज्ञान की कोई पुस्तक हिंदी अथवा संस्कृत भाषा में उपलब्ध नहीं रहा होगा। स्वामी दयानन्द जी के आत्मकथा से विदित होता है कि वह मृत्यु के पहले लगभग सोलह हजार रुपया, दो आर्य विद्यार्थियों को जर्मनी को विज्ञान की उच्चशिक्षा प्राप्त करने हेतु इकट्ठा कर चुके थे। उनके मृत्यु के बाद यह कार्य नहीं हो सका और विज्ञान के महत्व एंव आवश्यकता को भूल गये। पाठकों के संज्ञानार्थ, प्रकाशक मानव उत्थान संकल्प संस्थन, 46/5 कम्यूनिटी सेंटर, ईस्ट आफ कैलाश, नई दिल्ली– 110065 सन् 2005 में प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश में लिखे विभिन्न पृष्ठों में वैज्ञानिक तथ्यों को, विज्ञान की महत्ता दर्शाने हेतु लिखा जा रहा है। अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश में मात्र पृष्ठ नम्बर भिन्न हो सकते हैं। इस लेख में लिखे "विज्ञान के तथ्य" विज्ञान के विषयों को भी लिखा गया है।

1. पृष्ठ 33, समुल्लास 2 में–"उत्तर–कहिए ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथ्वी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं, जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें?"

विज्ञान के तथ्य–भूगोल यानी Geography विज्ञान से हम सभी जानते हैं कि सूर्य एक जड़ पदार्थ और आग का बहुत ही बड़ा गोला है जो हमें ताप और प्रकाश ही दे सकता है और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इसमे चेतनता के कोई गुण नहीं हैं। यह पृथ्वी से कई करोड़ो किलोमीटर दूर है।

2.पृष्ठ 41, समुल्लास 3 में –"उत्तर – जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते। क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो, जहाँ होम होता है वहां से दूर देश मे स्थित पुरुषों को नसिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने से समझ लो कि अग्नि में डाला गया पदार्थ सूक्ष्म होकर फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृति करता है।"

विज्ञान के तथ्य–विज्ञान में पदार्थ विद्या का अध्ययन भौतिक शास्त्र Physics एंव रसायन शास्त्र Chemistry में होता है जिसके अनुसार किसी पदार्थ का नाश यानी अभाव नहीं होता है और समस्त वनस्पति पदार्थों के घटक, उड़नशील पदार्थों को गर्म

कर वाष्प यानी वायुरूप मे बदल कर हवा में फैला सकते हैं। विज्ञान से ही हम जानते हैं कि तीव्र प्रदीप्त अग्नि जो ज्वालायुक्त अग्नि ही होती है, में जब कोई जल सकने वाले पदार्थ जैसे लकड़ी, घृत, तेल, समस्त वनस्पति पदार्थ डाले जाते हैं तब वह सब भी ज्वाला के साथ जल जाते यानी दहन हो जाते हैं। हम किसी पदार्थ की अवस्था और स्वरूप ही बदल सकते हैं। उसका नाश नहीं कर सकते हैं।

3. पृष्ठ 86, समुल्लास 4 में– "चौथा वैश्वदेव– अर्थात् जब भोजन तैयार हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़के घृत–मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि लेकर अलग धर निम्नलिखित मंत्रों से आहुति और भाग करें।"

विज्ञान के तथ्य–यह एक बलिवैश्वदेव यज्ञ की प्रक्रिया, साधन एंव सामग्री लिखा है जिससे समुल्लास 3 में लिखे यज्ञ के सभी लक्ष्यों की प्राप्ती होती है। जो रसायन शास्त्र विज्ञान एंव प्रत्यक्ष अनुभूति एंव देखने और सूंघने में भी सत्यापित होती है। घर में बनी उपरोक्त व्यंजनों को चूल्हे की अग्नि जो कि कोयला या कंडा की ही अग्नि होती हैं, में आहुतियां देने से, इन पदार्थों का दहन नहीं होता है, बल्कि यह पदार्थ गर्म होकर मात्र सूक्ष्म कणों में अलग अलग होकर भाप यानी वाष्प बनकर हवा में फैलती है। इन वाष्प कणों में घृत एंव हव्य के मूल रसायनों के समस्त गुण सुगंध, स्वाद, औषधीय गुण आदि यथावत् ही रहते हैं। कुछ भी नष्ट नहीं होता है। यह रसायनें समस्त मनुष्यों, जानवरों, पशु पक्षियों को श्वासं लेने पर ग्रहण होकर विभिन्न लाभ देते हैं। कोयला या कंडा की यह मध्यम आँच की अग्नि होती है। इसमें अग्नि के ज्वालाओं जितना उच्च्य तापमान नहीं होता है यानी उष्णता की तीव्रता नहीं होती, कि आहुति किए गए पदार्थों का दहन हो सके। यह मात्र गर्म होकर वाष्प बनकर हवा में फैलते हैं। अतः लिखा हुआ तथ्य विज्ञान एंव प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सत्यापित होता है।

4. पृष्ठ 181, समुल्लास 8 में–"उत्तर –जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति–– (करीब 10 लाइन के बाद)–––। जैसे हल्दी, चूना और नींबू का रस दूर –दूर देश से आकर आप नहीं मिलते, किसी के मिलाने से मिलते हैं, उसमें भी यथायोग्य मिलाने से रोरी बनती है, अधिक न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं होती;"।

विज्ञान के तथ्य–हम सभी विज्ञान के रसायन शास्त्र एंव प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं कि एक निर्धारित तापमान के दूध में बहुत थोड़ा दही मिलाने से कुछ घंटो में ही पूरा दूध, दही बन जाता है। ऐसे ही राख पर नींबू या कोई भी तेजाब डालने से खूब गैस के बुलबुले उठते हैं। यह सब इन पदार्थों में रसायनिक क्रियाएं होने से होती हैं। ऐसे ही हल्दी, चूना और नींबू रस को निर्धारित मात्राओं में मिलाने से रोरी बनती है।

5. पृष्ठ 181, समुल्लास 8 में–"उत्तर – विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। ––(करीब 2 लाइन के बाद)–––। जो तुम इसको न मानों तो कठिन से कठिन पाषाण, हीरा और फौलाद आदि तोड़ के, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथक्–पृथक् मिले हैं वा नहीं?"

विज्ञान के तथ्य–सभी विज्ञानी भौतिक शास्त्र से जानते हैं कि गति के तीन नियम हैं जिसे हम "न्यूटन के गति के 3 नियम" से जानते हैं। संक्षिप्त में पहला नियम कि कोई पदार्थ बगैर बल लगाये, अपने आप गतिमान नहीं हो सकता है। अतः बगैर कर्त्ता के कार्य के कोई कार्य नहीं हो सकता है। दूसरा नियम कि किसी वस्तु पर जिस दिशा में जितना ज्यादा बल लगाया जायेगा तो उस वस्तु में उसी दिशा में उतना ही ज्यादा गति होगा। तीसरा नियम कि प्रत्येक क्रिया की सदैव बराबर विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है जिसका उदाहरण है कि जब हम मेज पर जितने बल से मुक्का मारते हैं तब मेज की सतह द्वारा हमारे हाथ पर उतना ही बल प्रतिक्रिया में लगा देता है जिससे ही हमे चोट लगती है। हम विज्ञान से जानते हैं कि किसी भी तत्वों का सूक्ष्मतम कण परमाणु होता है। किसी भी पदार्थ का सूक्ष्मतम कण अणु होता है जिसमें एक से अधिक तत्वों के परमाणु होते हैं जो परस्पर आर्कषण बल से आपस में जुड़े होते हैं जिसे बल आदि प्रयोग करने पर अलग अलग किए जा सकतें हैं।

6. पृष्ठ 190, समुल्लास 8 में–"उत्तर – ये दोनो आधे झूठे हैं। क्योंकि वेद में लिखा है कि –आयं गौः ––– प्रयन्त्स्वः।। यजुः०। अ० 3। म० 6 ।।

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर आकाश में घूमता जाता है, अर्थात् सूर्य के चारों ओर भूमि घूमा करती है – (करीब 4 लाइन के

बाद)———और सब मूर्तिमान द्रव्यों को दिखलाता हुआ, सब लोकों के साथ आर्कषण गुण से सह वर्त्तमान, अपनी परिधि में घूमता रहता है, ——(करीब 3 लाइन के बाद)———जैसे यह चंद्र लोक सूर्य से प्रकाशित होता है, वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रकाशित होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं, क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता जाता है, उतने मे दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है, उतने में रात।"

विज्ञान के तथ्य—भौतिक शात्र एंव भूगोल शास्त्र के ज्ञान के अनुसार से हम जानते हैं कि पृथ्वी थल एंव जल के साथ सूर्य के चारों ओर घूमती रहती है। हम यह भी जानते हैं कि पृथ्वी, सूर्य, चद्रमा आदि सभी ग्रह परस्पर आपसी आर्कषण यानी गुरुत्वाकषर्ण बल से अपनी अपनी धुरी पर अपने अपने निर्धारित परिधि पर निरतंर अनवरत चलायमान यानी घूमते रहते हैं। सूर्य से ही पृथ्वि, चंद्रमा आदि प्रकाशित होते हैं। अतः ऋषि द्वारा लिखे गये तथ्य पूर्णतः विज्ञान सम्मत है।

7. पृष्ठ 260, समुल्लास 11 में—पन्द्रहवाँ— परमेश्वर ने पुष्पादि सुगन्ध, वायु—जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं, उनको पुजारी तोड़ कर नष्ट कर देते हैं। पूर्ण सुगन्ध के समय तक उसका सुगन्ध होता है, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल—सड़कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। इसलिये मूर्तिपूजा करने में पाप होता है।

विज्ञान के तथ्य— विज्ञान के प्राणी शास्त्र Zoology एंव वनस्पति Botany से जानते हैं कि एक फूल जितने दिन पेड़ में लगा रहता है, उतने दिन उसमें सुगंधित रसायन दिन रात चौबीसो घंटे बनते रहते हैं और वह हवा में फैल कर लाखों लोगों को नसिका से ग्रहण होकर लाभ देतें रहते हैं। जिस क्षण यानी समय पर फूल को तोड़ा जाता है, उसी क्षण से सुगन्ध का बनना बंद हो जाता है और उसका सड़न प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। सड़न में कई गैसें जैसे कार्बन डाईआक्साइड, फार्मलडिहाइड, इथेनॉल आदि हानिकारक होते हैं जो हवा को प्रदूषित करती है तथा हवा में रोगाणु भी फैलते हैं। इस प्रकार फूलों को तोड़ना पूर्णतः अवैदिक, आर्य समाज के नियमों के विरुद्ध है, पर्यावरण के हित में नहीं है तथा विज्ञान सम्मत भी नहीं है। जिस कार्य से किसी का अहित होता है, वह कार्य पापमय होता है अतः फूलों का तोड़ना पाप है और ऋषि द्वारा लिखा गया तथ्य पूर्णतः विज्ञान सम्मत है।

8, पृष्ठ 265, समुल्लास 11 में—"उत्तर—झूठी। क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन मे अन्धेरा रहता है। दीप रात—दिन जला करता है। जब जल की धारा छोड़ते हैं, तब उस जल में बिजुली के समान दीप का प्रतिबिम्ब चलकता है, और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे,न बढ़े, जितना का उतना रहता है। ऐसी लाीला करके बिचारे निर्बुद्धियों को ठगते हैं।

विज्ञान के तथ्य—भौतिक शास्त्र Physics के प्रकाश विज्ञान के ज्ञान से हम जानते हैं कि किसी वस्तु को देखने पर वह वास्तिविक आकार का दिखता है। यदि वस्तु के पहले कोई पारदर्शी शीशा आ जाय तब वस्तु छोटा या बड़ा एंव टेढ़ा मेढ़ा आदि दिखाई पड़ सकता है जो पारदर्शाी शीशा के सीधा होने या बीच में "दबा होने" या "बीच में उभरा होन" पर निर्भर करता है जो प्रकाश के किरणों के आवर्तन, परावर्तन होने पर निर्भर करता है जिसे हम दिन प्रतिदिन के जीवन में भी देखते रहते हैं। अतः स्वामी दयानंद जी द्वारा लिखा उपरोक्त तथ्य पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। इसे स्वयं सत्यापित करने के लिए एक शीशे का ग्लास लीजिये। इसे किसी मेज आदि पर रखें। इसके पीछे कोई वस्तु रख दीजिये और ग्लास के द्वारा उस वस्तु को देखिये कि वह वस्तु कैसा दिखता है। अब ग्लास मे जल भर दीजिये और वस्तु को देखिये वह भिन्न दिखाई देगा। अब वस्तु को देखते हुए, धीरे धीरे ग्लास को खिसकाइये अब वस्तु विभिन्न रुपों में दिखाई देगा। यह प्रकाश के किरणों के आवर्तन, परावर्तन होने के कारण होता है।

9. पृष्ठ 265, समुल्लास 11 में —"उत्तर — झूठा—झूठा—झूठा। यह सब पोपलीला है। क्योंकि वह, मूर्ति का मुख पोला होगा। उसका छिद्र पृष्ठ में निकाल के, भित्ती के पार, दूसरे मकान में नल लगा होगा। जब पुजारी हुक्का भरवा, पेंचवान् लगा, मुख में नली जमाके, पड़दे डाल, निकल आता होगा, तभी पीछे वाला आदमी मुख से खींचता होगा तो इधर हुक्का गड़— गड़ बोलता होगा। दूसरा छिद्र नाक और मुख

के साथ लगा होगा। जब पीछे फूकें मार देता होगा तब नाक और मुख के छिद्रों से धुआँ निकलता होगा। उस समय बहुतेरे मूढ़ों को धनादि पदार्थों से लूट कर धन रहित करते होगें।"

विज्ञान के तथ्य– हम सभी जानते हैं कि मिट्टी, धातुओं की मूर्तियां अंदर से खोखली यानी पोली बनाई जाती हैं। मूर्तियों के मुख और नाक में छिद्र बनाया जा सकता है तथा तली में छेद कर उसमें पाइप लगाकर जमीन के नीचे से ले जाकर पीछे के कमरे या परदे के पीछे ले जाकर उपरोक्त कार्यवाही सीधे साधे लोगों को मूर्ख बनाया जा सकता है जो विज्ञान के भौतिक शास्त्र वा सामान्य ज्ञान से उचित है।

10. पृष्ठ 266, समुल्लास 11 में–"प्रश्न– देखो! सोमनाथजी पृथ्वी से ऊपर रहता था और बड़ा चमत्कार था, क्या यह भी मिथ्या बात है?

उत्तर– हाँ मिथ्या बात है। क्योंकि वह लोहे कीपोली मूर्ति थी। नीचे ऊपर चुम्बक पाषाण लगा रखे थे। उसके आकर्षण से वह मूर्ति अधर खड़ी थी।''

विज्ञान के तथ्य–हम सभी जानते हैं कि लोहे या अन्य धातु की पोली मूर्ति बहुत हल्की होती हैं। भौतिक शास्त्र के चुंबक अध्याय के ज्ञान से लोहे की मूर्ति को चुबंक अपनी ओर खींचता है तथ दो चुबंको के बीच एक लोहे के वस्तु या मूर्ति को इस प्रकार रखा जाय कि वह किसी भी चुबंक के पास न जा सके बल्कि वह एक स्थान पर स्थिर रहे। ऐसा ही सोमनाथ के मंदिर में होता होगा। यह बात विज्ञान सम्मत एंव प्रत्यक्ष में करके देखा जा सकता है।

11. पृष्ठ 276, समुल्लास 11 में–"प्रश्न– ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है, सबको खा जाती है और प्रसाद देवे तो आधा खा जाती और आधा छोड़ देती है। ––(करीब 5 लाइन के बाद)––उत्तर–नहीं। क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़ में से आगी निकलती है। उसमें पुजारी पोपों की विचित्र लीला है। जैसे बघार के घी के चमचे में ज्वाला आ जाती, अलग करने से वा फूँक मारने से बुझ जाती, थोड़ा सा घी को खा जाती, शेष छोड़जाती, उसी के समान वहां भी है। जैसे चूल्हे की ज्वाला में जो डाला जाय, सब भस्म होता,

जंगल वा घर में लग जाने से सबको खा जाती है।"

विज्ञान के तथ्य– हम सभी विज्ञान के भूगर्भ शास्त्र Geography के ज्ञान से जानते हैं कि पृथ्वी के सतह मिट्टी, पत्थर के पहाड़ों के हैं तथा उसके नीचे जल, पत्थर के कोयला, पेट्रोलियम पदार्थों आदि के तह हैं और केद्रं के आस पास अतयतं उच्च तापमान के पिघले हुए पदार्थ तरल अवस्था में हैं तथा वर्तमान में कभी कभी पृथ्वी के सतह फटकर बाहर फौव्वारे के रुप में निकलता रहता है जिसे हम ज्वालामुखी कहते हैं और अज्ञानता में देवी देवता मानते हैं। यही उपरोक्त प्रश्न– उत्तर में लिखा है जो पूर्णतः भूगर्भ विज्ञान सम्मत है।

बघार बनाने को, चमचे में घृत आदि को "मध्यम आँच" के अग्नि पर रखकर गर्म कर भूना जाता है। विज्ञान के भौतिक शास्त्र एंव रसायन शास्त्र के अनुसार, गर्म करते समय घृत आदि का तापमान जब 160 सें 260 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच रहता है, तबघृत आदि का अतिन्यून मात्रा भाप यानी वाष्प यानी वायुरुप में मूल सुगंधियों, गुणों के साथ हवा में फैलने लगती है। किसी कारण से जब अग्नि का तापमान"उच्च" यानी 260 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक हो जाता है, तब घृत आदि का ज्वलन, दहन होने लगता है। इस दहन प्रक्रिया में पदार्थ के उड़नशील घटक वाष्प बनकर, ऊपर वायु में आते ही, वायु के घटक आक्सीजन गैस से रसायनिक क्रिया कर, कार्बन डाईआक्साइड गैस, कुछ पानी भाप के रुप में एंव "ज्वाला" यानी अत्यधिक उर्जा गर्मी एंव प्रकाश में परिवर्तित हो रहती है, जिससे वातावरण में उष्मा एंव प्रकाश फैलती है। इस रसायनिक क्रिया होने के कारण घृत आदि की मात्रा घटती जाती है। ज्वाला यानी लौ के क्षेत्र में तापमान लगभग 300 से 1500 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो सकता है। ज्वाला बनने की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक दहन हो रहे पदार्थ घटते घटते समाप्त हो जाते हैं। अतः यह तथ्य विज्ञान सम्मत है एंव प्रत्यक्ष में करके देखा जा सकता है। *******************

क्रमशः

जो–जो पराधीनता है वह–वह सब दुःख और जो–जो स्वाधीनता है वह–वह सब सुख, यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानना चाहिए।

२४ जून जन्मदिवस पर विशेष

स्वातंत्र्य समर में सशस्त्र क्रान्ति के प्रथम प्रणेता

–✍ प्रांशु आर्य

भारत की आजादी का इतिहास अनगिनत किशोरों व युवाओं के बलिदान का इतिहास है। ये ऐसे तरुण वीरों के शौर्य व पराक्रम का इतिहास है जिन्होंने अपनी जिन्दगी और जवानी का तिल–तिल जलाकर भी स्वतंत्रता समर की अग्नि को कभी बुझने न दिया। किन्तु आज प्रश्न ये है कि वर्तमान देश की युवा पीढ़ी को इन क्रान्तिवीरों के कारनामे तो छोड़िये कितनों के नाम भी स्मरण हैं ? बंदा बैरागी, रानी चेन्नम्मा, अवंती बाई, मीना कुमारी, करतार सिंह सरापा, रासबिहारी बोस, मदन लाल धींगड़ा, प्रफुल्लचंद्र चाकी, ठाकुर रोशन सिंह से क्रान्तिवीर–वीरांगनाओं के नाम आज कितने नौजवानों को याद है। याद भी तब हो जब इतिहास में कभी पढ़ाएं व बताएं गए हों। वामपंथी इतिहासकारों द्वारा लिखे गए पाठ्यक्रम ने क्रान्तिकारियों के नाम व रोमाञ्च पैदा करने वाले उनके जीवन कार्यों को देश के युवाओं के सामने कभी आने ही नहीं दिया। किसी कवि ने लिखा है –

काम करके जो सचमुच निराले गए,
गोरी जेलों के जो तोड़ ताले गए।
मुक्ति का पाठ हम को पढ़ा जो गए,
वे हीं अब पाठ्यक्रम से निकाले गए।।

आज हम अपने इस लेख में ऐसे ही एक विस्मृत क्रान्तिकारी की चर्चा करेंगे जिनका नाम कभी भारतीय इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में नहीं आया किन्तु भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में उनका और उनके भाइयों का नाम सदैव अमर रहेगा। उस वीर क्रान्तिकारी का नाम था ***दामोदर हरी चापेकर।***

दामोदर हरी चापेकर का जन्म २४ जून १८६६ को महाराष्ट्र में पुणे के निकट चिंचवाड़ नामक ग्राम में पिता हरि पंत चापेकर और माता द्वारका हरी चापेकर के जेष्ठ पुत्र के रूप में हुआ था। आपके दादा विनायक चापेकर एक कुशल व्यापारी व पिता प्रसिद्ध कीर्तनकार थे। अतः आपके जन्म के समय आपका परिवार धन–धान्य से सम्पन्न था। आप के पश्चात् आपके दो छोटे भाई बालकृष्णा हरी चापेकर (१८७२) व वासुदेव हरी चापेकर (१८७६) का जन्म हुआ।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में यह तीनों भाई – *दामोदर, बालकृष्ण व वासुदेव हरी चापेकर ही* ***'चापेकर बन्धुओं'*** *के नाम से प्रसिद्ध हैं।*

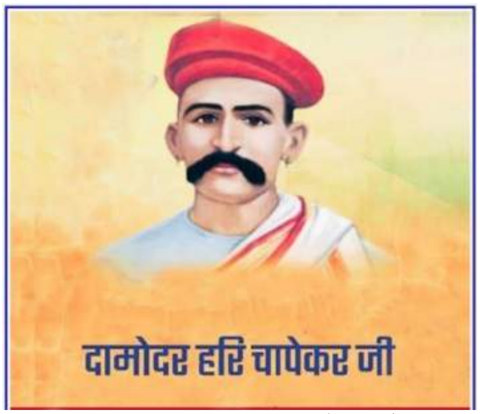

दामोदर व उनके भाइयों की आरम्भिक शिक्षा पुणे के हाई स्कूल में ही हुई। दामोदर बचपन से ही बड़े वीर स्वाभाव के थे। आप सैनिक बनना चाहते थे। किन्तु पारिवारिक व्यवसाय में भारी नुकसान के कारण आप आगे पढ़ न सके और अपने पिता का अनुसरण करते हुए कीर्तनकार बनने की राह पर निकल पड़े। आपने अपने ताऊ व चाचा से ढोल, मंजीरा, सारंग आदि वाद्य यंत्र बजाना बचपन में ही सीख लिए थे। आप भजन लिखा करते व आपके दोनों छोटे भाई भजन गाया करते थे। आप भी शीघ्र ही अपने पिता की तरह सारे नगर में एक अच्छे कीर्तनकार के रूप में प्रसिद्ध हो गए। आप अपनी आत्मकथा में लिखते हैं – *"हम अधिक नहीं पढ़ सके थे, लेकिन कीर्तन सुनने को आए अच्छे लोगों के साथ रहने, यात्राएं करते रहने, अनेक दरबारों में बड़े–बड़े राजकुमारों के साथ बैठने का अवसर मिलने और अति विशिष्ट लोगों की बातों को सुनने के अवसर ने हमारे ज्ञान में विपुल समृद्धि की। यह ज्ञान कुछ स्कूली परीक्षाएं पास करके पाए जाने की तुलना में कहीं अधिक ऊंचा था।"*

क्रान्तिकारी जीवन में प्रवेश –

ये समय का वो दौर था जब समूचे देश में अंग्रेजों के प्रति आक्रोश बढ़ता जा रहा था और स्वाधीनता के स्वर बुलंद हो रहे थे। देश में गरम दल के नेताओं का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। महाराष्ट्र में बाल

गंगाधर तिलक गरम दल का नेतृत्व कर रहे थे। 'केसरी' पत्रिका के वे सम्पादक थे। लाग लपेट के बातें को न कहकर सीधे व स्पष्ट शब्दों में अपनी बात लिखा करते थे। उनके शब्दों की चोट पाठकों के मन पर ठीक वहीं पड़ती थी जहां पड़नी चाहिए होती थी। तिलक अपनी विचारोत्तेजेक लेखनी से नौजवानों की विचारधारा को राष्ट्रीय चिन्तन की ओर मोडने का प्रयास करते थे। युवा शक्ति को एकत्रित करने व क्रान्ति की गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए तिलक ने बड़ी सूझबूझ से सन् १८९५ में गणपति उत्सवों की शुरुआत की। इन उत्सवों को आरम्भ करने के पीछे कारण यह था कि भय से ग्रस्त अंग्रेज सरकार एक स्थान पर अधिक व्यक्तियों को इकट्ठा नहीं होने देती थी। एकत्रित होने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। किसी भी तरह के राजनैतिक कार्यक्रम पर पूर्ण पाबंदी थी। ऐसे में केवल एक ही रास्ता था कि धार्मिक कार्यक्रम का मार्ग अपनाया जाए। तिलक ने इसी मार्ग को अपनाते हुए गणेशोत्सवों का आरम्भ किया जिसमें आगे तो अंग्रेजो को भ्रमित करने के लिए पूजा–अर्चना व कीर्तन होते थे और पीछे भीड़ की आड़ में क्रान्तिकारी इकट्ठे होकर क्रान्ति की योजनाएं व रूपरेखा बनाया करते थे। दस दिन तक चलने वाले इन्हीं उत्सवों में कीर्तन करने के लिए दामोदर और उनके छोटे भाई जाया करते थे। इन्ही कार्यक्रमों के दौरान दामोदर का परिचय बाल गंगाधर तिलक व अन्य क्रान्तिकारियों से हुआ। दामोदर, तिलक के स्वराज्य के विचारों से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्हें अपना गुरु व आदर्श मानने लगे। यहीं से दामोदर का अपने क्रान्तिकारी जीवन में प्रवेश होता है।

इतिहासकारों का मानना है कि अंग्रेजों के विरुद्ध भारत में संगठित क्रान्ति का रास्ता सर्वप्रथम महाराष्ट्र में ही अपनाया गया। क्रान्तिकारियों को संगठित करने के लिए चापेकर बन्धुओं ने पुणे में *'व्यायाम मण्डल'* की स्थापना की। व्यायाम मण्डल द्वारा वे युवकों को व्यायाम और शस्त्र संचालन में निपुण बनाने के साथ–साथ अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह के लिए तैयार करते थे। व्यायाम मण्डल की स्थापना का उद्देश्य विशुद्ध राजनैतिक था। दामोदर कांग्रेस के शांतिपूर्ण व समझौतावादी तरीकों के कट्टर विरोधी थे। दामोदर के विचारों व मंतव्यो का परिचय उनकी आत्मकथा से मिलता है। उन्होंने लिखा है – *''भाषणबाजी करके कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। देश की भलाई तभी होगी जब देश के करोड़ों काबिल लोग देश के लिए युद्ध क्षेत्र में प्राणों की बाजी लगाने और तलवार की धार पर चलने को तैयार होंगे।''*

शिवाजी व गणपति उत्सवों के दौरान श्लोकों के पाठ के माध्यम से युवाओं में जोश भरने के लिए कहते –*''भाण्ड की तरह शिवाजी की कहानी दोहराने मात्र से स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती। आवश्यकता है शिवाजी की तरह तेजी से काम करने की। आम आदमी को तलवार और ढाल पकड़नी ही होगी, यह जानते हुए कि हमें राष्ट्रीय संग्राम में जीवन का जोखिम उठाना होगा।''* गणपति श्लोक का भावार्थ करते हुए कहते – *''अफसोस कि तुम गुलामी की जिन्दगी पर शर्मिंदा नहीं हो। जाओ आत्महत्या कर लो। ये अंग्रेज कसाईयों की तरह गाय और बछड़ों को मार रहे हैं, इसे संकट से मुक्त कराओ। मरो, लेकिन अंग्रेजों को मार कर। धरती पर बोझ न बनो। यह देश हमारा है अंग्रेज यहाँ कैसे राज कर सकते हैं।''*

प्लेग का प्रकोप और रैंड के अत्याचार –

चापेकर बन्धुओं का यह आन्दोलन जोर पकड़ ही रहा था कि सन् १८९७ में मुम्बई व पुणे में प्लेग (Black Deadth) जैसी भयंकर महामारी फैल गई। चारों ओर हा–हा कार मच गया। ये महामारी कुछ ऐसी ही थी जैसे आज सारे विश्व में कोरोना फैला हुआ है। अंग्रेजों ने उस समय प्लेग से निपटने के लिए 'विशेष प्लेग समिति' का गठन किया और समिति का अध्यक्ष वाल्टर चार्ल्स रैंड को नियुक्त किया। रैंड भारतीयों से भयंकर द्वेष करता था। महामारी से निपटने के नाम पर क्रूरता की हदें पार करते हुए रैंड ने जनता पर भीषण अत्याचार ढाए। कितने ही स्वस्थ लोगों को भी वह प्लेग शिविरों में भेज देता। मकानों को खाली करा देता। पुलिस वाले लोगों के घरों में जबरदस्ती घुस जाते, तोड़फोड़ व मारपीट करते। उनके घरों में आग लगा देते। होना तो यह चाहिए था कि ऐसी महामारी के समय में प्रशासन लोगों की सहायता करता। बीमारी की चपेट में आए लोगों के उपचार का प्रबन्ध करता है। तिलक ने अपने 'केसरी' पत्र में इन अत्याचारों का जमकर विरोध किया। *'सरकार का दिमाग 'ठिकाने' पर है क्या ?' 'राज्य*

करने का अर्थ दमन करना नहीं है', जैसे शीर्षकों से सरकार पर हमले करते हुए तीखें व धारदार सम्पादकीय लिखें। 'सुधारक' पत्रिका ने ३ मई १८६७ के अंक में लिखा कि – *''हमें इन अत्याचारियों को पाठ पढ़ाना चाहिए।''*

ऐसे संकट काल में भी गोरी सरकार महारानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक की हीरक जयंती मनाने जा रही थी। इसी बीच तिलक ने चापेकर बन्धुओं से कहा कि – *''शिवाजी ने अपने समय में अत्याचारों का विरोध किया था, किन्तु इस समय अंग्रेजों के अत्याचारों के विरोध में तुम लोग क्या कर रहे हो ?''*

तिलक के हृदय विदीर्ण करने वाले शब्द व अंग्रेजों के अत्याचारों को देख, पढ़ व सुन कर के चापेकर बन्धुओं का खून खौल उठा। अत्याचारी सरकार के विरुद्ध प्रतिशोध की अग्नि में जल रहे चापेकर बन्धुओं ने रात के अन्धेरे में विक्टोरिया की मूर्ति के चेहरे पर कालिख पोत कर उसके गले में फटे जूतों की माला पहना दी जिसका लाख हाथ–पैर मारने पर भी करने वालों का कोई सुराग अंग्रेजों के हाथ न लगा। इसके बाद २२ जून सन् १८६७ को पुणे के गवर्नमेंट हाउस में महारानी विक्टोरिया की हीरक जयंती मनाई जा रही थी। पूरा शहर रोशनी से सजाया गया था। रैंड और लेफ्टिनेंट एर्यस्ट समारोह में आमंत्रित थे। अंग्रेज जश्न में डूबे हुए थे। चापेकर बन्धु ऐसे ही स्वर्णिम अवसर की तलाश में थे। उन्होंने रैंड की हत्या करने की योजना बनाई। आधी रात को जब रैंड बग्गी पर बैठकर एर्यस्ट के साथ समारोह से लौट रहा था दामोदर और बालकृष्ण ने दोनों पर दनादन गोलियां दाग दी। एर्यस्ट का काम तो वही तमाम हो गया और रैंड ३ दिन बाद अस्पताल में मर गया।

इस हमले ने अंग्रेजों के होश उड़ा दिए। पुलिस को हत्यारों का कहीं कोई सुराग नहीं मिल रहा था। उसने हत्यारों का नाम बताने वालों को २० हजार रुपए इनाम देने की घोषणा की। इनाम के लालच में चाफेकर बन्धुओं के मण्डल के ही दो द्रविड़ बन्धु गणेश शंकर द्रविड़ और रामचंद्र द्रविड़ अंग्रेजों से जा मिले और चापेकर बंधुओं का सारा भेद खोल दिया। दामोदर पकड़े गए। बालकृष्ण और वासुदेव किसी तरह भाग निकले किन्तु पुलिस द्वारा बार–बार उनके घरवालों को परेशान करने पर बालकृष्ण ने

आत्मसमर्पण कर दिया।

दोनों भाइयों पर अभियोग चला और दोनों ही का फांसी की सजा सुनाई गई।

वासुदेव अपने दोनों बड़े भाइयों की गिरफ्तारी से विश्वासघातियों के विरुद्ध गुस्से में लाल पीले हो रहे थे। अपने मित्र महादेव गोविंद विनायक के साथ मिलकर मुखबिरी करने वाले दोनों द्रविड़ भाई गणेश व रामचंद्र को मौका पा कर उन्होंने गोली मार दी।

वासुदेव और गोविंद विनायक पकड़े गए। दोनों को फांसी की सजा हुई। स्वतंत्रता के परवानों को फांसी का कोई भय नहीं था। फांसी के एक दिन पहले दामोदर से अंग्रेज अधिकारी के पूछने पर कि आपको फँसी होने वाली है पर उन्होंने कहा *–''मरने से क्या डरना?'' रैंड पिस्तौल की गोली से मरा, अन्य लोग घोड़ों से गिरकर मर जाते हैं, मैं फांसी झूल कर मरूंगा।''*

अंतिम इच्छा पूछने पर उन्होंने कहा कि हमारे शरीर का अंतिम संस्कार हिंदू रीति रिवाज के अनुसार हो और यह कह कर १८ अप्रैल १८६८ को गीता हाथ में लिए पुणे की यरवाडा जेल में फांसी के फंदे को हंसते हुए चूम गए। इनके बाद ८ मई १८६६ को वासुदेव और १२ मई १८६६ को बालकृष्ण भी हँसते हुए फांसी के फंदों पर झूल गए।

इस तरह भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में चापेकर बन्धु अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति करने वाले पहले क्रान्तिकारी कहे जाते हैं।

गुरु गोविंद सिंह के चार पुत्रों के बलिदान के बाद इतिहास में यह दूसरा बड़ा उदाहरण था जिसमें एक ही मां के तीन लाल भारत माता की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की भेंट चढ़ा गए। आज हम कल्पना ही कर सकते हैं कि वे कितने वीर रहे होंगे। लाला लाजपत राय ने उनके बलिदान पर लिखा था –

"चापेकर बन्धु वास्तव में भारत के क्रान्तिकारी आंदोलन के जनक थे।"

आज की युवा पीढ़ी अपने इन बलिदानी वीरों के विषय में जाने इसी उद्देश्य से यह लेख लिखा गया है। आशा है इसे पढ़कर के युवा मित्रों को कुछ प्रेरणा मिलेगी और वे भी अपनी देश, जाति के लिए कुछ करने के लिए संकल्पित होंगे। ****************

सत्य के प्रतिमान और पालन

शूल पूरित है सदा से सत्य की राह,
सत्यव्रत का हम करते रहें निर्वाह।
जलधि सा गहरा है अंतस मनुज का,
कौन माप सका है इसकी थाह।

सत्य की प्रमाणिकता पर किंचित नहीं संदेह,
सत्य से अलंकृत करो आत्मा और देह,
सत्यवादी हरिश्चंद्र जग में हैं विख्यात,
सत्य हेतु कष्टों में किया था निबाह।

सत्य की प्रकृति स्वर्ण की भाँति शुद्ध,
सत्य खोज में सिद्धार्थ हो गए गौतम बुद्ध,
सुकरात ने सत्य के लिए किया विषपान,
सत्य मंदिर,मस्जिद,गिरजाघर और दरगाह।

आओ जीवन पथ पर हम सत्य का वरण करें,
सत्यवादिता से स्वच्छ अंतःकरण करें,
सत्य की मशाल लेकर दीप्तिमान करें पथ,
बाधित न हो सत्य सरिता का प्रवाह।

–✍ प्रीति चौधरी "मनोरमा"
जनपद बुलन्दशहर
(उत्तरप्रदेश)

पशु–वेदना

मूक हूँ अव्यक्त मेरी वेदना है
अनसुना है स्वर हमारा सामने कुहरा घना है।
ढो रहा हूँ बोझ मानव का निरंतर
मैं खिलाता हूँ मगर खाना मना है।।

छीन कर सब कुछ मुझे बेघर किया है
नाम 'पशु' है हो गया हूँ बेसहारा।
भूख से तड़पूँ है काया रुग्ण मेरी
स्वार्थी-लोभी मनुज से मैं हूँ हारा।।

काट तन मेरा करे जो बोटी-बोटी
मांस खाता चर्म का व्यापार करता।
जो प्रभु मुझको बनाता है उसे भी
पूजता तो है मगर उससे न डरता।।

काम पशुता का करे बनता है मानुष
रात-दिन आपस में करता है लड़ाई।
बन गया कट्टर हुआ आतंकवादी
नित्य ही निज सोच की करता बड़ाई।।

तन मेरा निर्वस्त्र धन कोई नहीं है
भूख भर खाने से मतलब है हमारा।
मैं नहीं लेता कमीशन घूस से भी दूर हूँ
यातना का क्लेश सहता- हूँ- बेचारा।।

मुक्ति-समता-न्याय की अवधारणा से
क्यों विरत करके लिए अधिकार मेरे।
हे विधाता है तेरा अस्तित्व यदि तो
जीव की पीड़ा बराबर दुःख मिटा उनके
घनेरे।।

–✍ डॉ० दयाराम मौर्य 'रत्न'
सृजनाकुटीर, अजीतनगर,
प्रतापगढ़ (उ०प्र०)

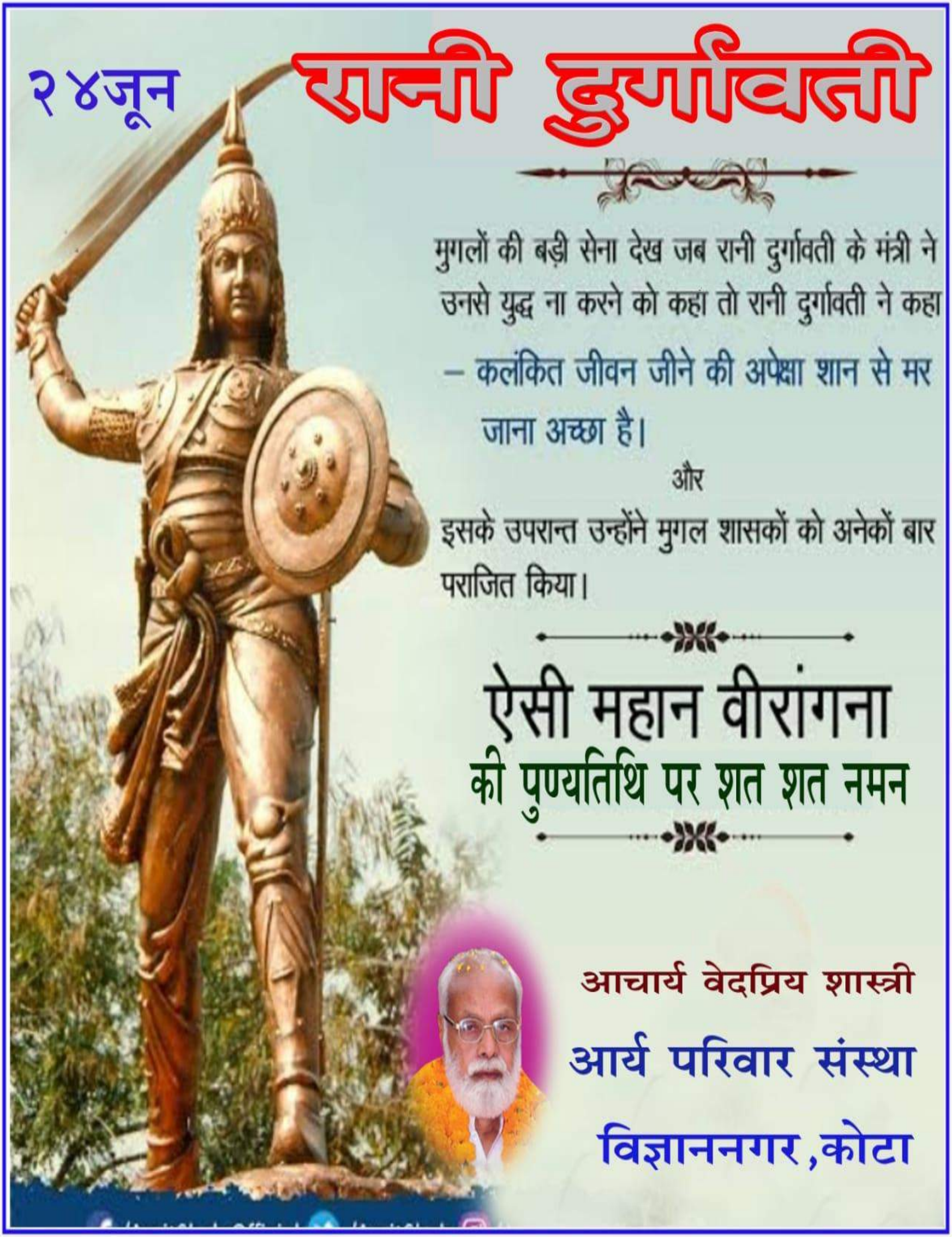

२४जून
रानी दुर्गावती
मुगलों की बड़ी सेना देख जब रानी दुर्गावती के मंत्री ने उनसे युद्ध ना करने को कहा तो रानी दुर्गावती ने कहा
– कलंकित जीवन जीने की अपेक्षा शान से मर जाना अच्छा है।
और
इसके उपरान्त उन्होंने मुगल शासकों को अनेकों बार पराजित किया।
ऐसी महान वीरांगना
की पुण्यतिथि पर शत शत नमन
आचार्य वेदप्रिय शास्त्री
आर्य परिवार संस्था
विज्ञाननगर,कोटा